परिचय

"अर्थ-पिशाच" लेखक की पैनी
दृष्टि और गहरी अनुभूति
का दर्पण है। उभरते
हुए सर्व-हारा और
मृतप्राय
पूंजीवादके संघर्षों
की अन्तिम कहानी है।
श्रम शक्ति बेचने वाले
आँखें खोल कर इसे पढ़ें

जन-साहित्य
इलाहाबाद

अर्थ-पिशाच

[स्कैच और कहानी संग्रह]

"शील"

जन-साहित्य,
इलाहाबाद

सितम्बर, १६४६] [मूल्य दो रुपया

प्रकाशक—
न्यू लिटरेचर
इलाहाबाद

मुद्रक—
केसरवानी प्रेस,
प्रयाग

उस

छोटी सी

कहानी को……

जो

अर्थ-पिशाच के कारण,

उपन्यास

बनने से

रह गई।

"शील"

यह मनगढ़न्त नहीं !

लेखक की आँखों देखी घटनाओं की अनुभूति है। कला के पारखी इसे कुछ भी कहें, पर तिल-तिल मिटने वाले मानव के रक्त और अस्थि-पेशियों के शिलान्यास पर खड़ी बलिदानों की यह दीवार, आगे आने वाली पीढ़ियों को चौंकाकर सचेत तो करती ही रहेगी।

शास्त्रों, स्मृतियों में ऋषियों द्वारा वर्णन किये हुये प्रतिबन्ध सत्य की दुहाई भले ही दें लेकिन यह साफ प्रकट होता है कि कानून वादी-प्रतिवादी की तर्क-शक्ति का ही सदैव सहारा लेता रहा है। धर्म संस्थापन का दामन पकड़ कर ही अब तक सामूहिक संगठन के कानून बने थे। अब तक के समाज में शासक के विरोधियों के दमन के लिये ही कानूनों की सृष्टि होती रही है।

राम का आदर्श-राज्य तुलसी के साहित्य का आदर्श हो सकता है और गान्धी के रामराज्य की कल्पना, हरिजन के इण्डियामेड कागज़ का आदर्श किन्तु अपने श्रम का दसांश माँगने वाले मज़दूर का सत्य आदर्श तो है, रोटी। जिसे आये दिन कानून द्वारा राष्ट्रीयता के मुलम्मे से मढ़ी लौह सीकचों को तोड़ने-मरोड़ने में ही अपने आदर्श का उदय देख पड़ता है।

कौन नहीं जानता कि न्यायालय सत्य नहीं निरी झूठ हैं। न्याय खरीदा जाता है। न्याय की माँग करने वालों को, गुन्डों डन्डों और गोलियों का सामना करना पड़ता है। जागीरदारी और जमींदारी खत्म करने का प्रस्ताव पास होता है लेकिन जब किसान ज़मीन पर अधिकार के लिये आगे बढ़ता है, तब ? कानूनी बंदिशें, किसान के लिये होती हैं और जमींदार ,जागीरदार के साथ शासन की चमकती हुई ज़हर से बुझी संगीनें !

तब रोटी का भूखा मनुष्य, कला का ही गला घोंटने को तैयार हो जाता है। उसे राजा-रानी के विरह-मिलन की कहानी न चाहिये। संगमरमर की दीवारों पर अंकित शराब में डूबी हुई आँखों को देखकर उसका पेट नहीं भर सकता। मध्यवर्गीय अभिरुचि की कला शोषित के भाग्य को नहीं बदल सकती। उसकी निज की परिस्थितियों से उद्वेलित संघर्षों और द्वन्द्वों का सामूहिक आन्दोलन उसके अपने हितों को सुरक्षित कर दीर्घ जीवन और सार्वजनिक कला को जन्म देगा।

जनशक्तियों के उत्सर्ग का अवरोध ह्रासोन्मुख पूंजीवादी सभ्यता की बर्बरता का चिन्ह है। क्रय-विक्रय उसके साधन हैं, वह अपने अस्तित्व के लिए मन्दिर, मस्जिद पर बैठकर समाज से धर्मात्मा की उपाधि ख़रीदता है; राजनैतिक संस्थाओं पर अधिकार जमाने के लिए बड़े-बड़े दान देता है, देश की गरीबी और दरिद्रता के नाम पर चार

आँसू बहा, छल-बल द्वारा स्वर्ग तक की सृष्टि करने वालों को वश में करता है।

"अर्थ-पिशाच" पुस्तक, खीझते हुए पूंजीवाद और उभरते हुए सर्वहारा के संघर्षों की तस्वीर है। आपको जैसी जँचे, आप जानें, मैंने तो अपना कर्तव्य किया है।

"शील"

सुरेन्द्र भवन प्रयाग
सितम्बर, १९४६

क्रम : ...

१—अर्थ-पिशाच ... १
२—चाँदी का जूता १०
३—छाया प्रेत १४
४—भावी दर्शन १६
५—बैल की रकम २२
६—पेरी पचिया २७
७—भूल ३४
८—समस्या और समाधान ३७
६—चिन्तना ४१
१०—कोयल बोल रही है ४४
११—कशमकश ४६
१२—टेलीफोन ४६
१३—मोटे देवता ५७
१४—तीन नेता ६४
१५—अन्नदान ६८
१६—वारन्ट ७५
१७—देश को सन्देश ७६
१८—समय की पुकार ८२
१६—गजीना ८७
२०—आम की गुठलियाँ ६७
२१—लाठियों के साये में ११३

अर्थ-पिशाच

जीवन और मृत्यु के बीच में, भगवान का जन्म होता है। वह भगवान! कौड़ी के पारे की तरह, प्रति क्षण, प्रति पल, मनुष्य की बुद्धि में विज्ञान बनकर डोलता रहता है। समाज की अपरिमित शक्तियों को सीमाबद्ध करने के लिये, मनुष्य का अहम्! संस्कृति,

सभ्यता और ऐसे सदाचारों की रचना करता है। जिनके द्वारा संस्कार रहित, पत्थर के टुकड़े भी, अप्रत्यक्ष रूप में बोलने लगते हैं। समाज उन्हीं देवालयों को, जीवन की नैसर्गिक मान्यताओं का अधिष्ठाता मान लेता है। तभी अर्थ-पिशाच समाज की प्रत्येक क्रिया को नियंत्रित कर नरमेध की तैयारी करता है। व्यक्ति की लिप्सायें बहिंमुख हो उठती हैं। तभी वह समाज की बलिदानी शक्तियों का क्रय-विक्रय करता है। धर्म और मजहब की आड़ में सर्वहारा की सचेष्ट गति को अवरुद्ध करने के लिये, मतभेद पैदा करता है।

इसीलिये, इस कथा के नायक मिल मालिक ने, शोषण की भित्ति पर एकत्रित किये हुये कोष से, देश की सबसे बड़ी राजनैतिक संस्था को एक लाख रुपये का दान दिया।

दानी, भगवान का बेटा कहलाता है। इसीलिये देश भर के समाचार पत्रों ने, दानवीर और देश-भक्त लिखकर भूरि-भूरि प्रशंसा की। कालम के कालम सम्पादकों ने मिल-मालिक की ख्याति में रंग डाले। छोटे, बड़े, सभी देशभक्त आनन्द में नाच उठे। सबसे बड़ा सरकार परस्त देशभक्त बन गया। छोटे-छोटे कार्यकर्ताओं को भी कारों में बैठ कर, स्वर्ग सुवासित, शहर के पेरिस में जाने, नाना प्रकार की मछलियों, नग्ना- अर्ध नग्ना नारियों के सम्मोहक चित्र, बिजली के जोर से, सागर जैसी लहरें लेने वाला तालाब, रति करती हुई, देशी और विदेशी, पत्थर की मूर्तियाँ, आँखों को बहका देने वाला, मखमली पार्क, जिसमें

सुगन्धिहीन पुष्प, और एक टोली के साथ घूम-घूमकर, कृत्रिम, मांसल, वासनाओं के जन्मज, से हाथ मिलाने और दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। एक बहुत बड़ी दावत हुई। बड़े-बड़े नेताओं ने बधाई दी और कार्यकर्ताओं ने दावत खाकर अपने-अपने भाग्य को सराहा।

दूसरे दिन कपड़े की एक मिल में हड़ताल हो गई। बात ही बात में पाँच हजार मजदूर मिल के फाटक पर एकत्रित हो गये। मजदूरों में तीव्र रोष उभर आया। मिस्त्रियों, मास्टरों और सुपरवाइजरों की एक न चली। मजदूर अपनी माँग पर अड़ गये। मैनेजर ने मिल मालिक को फोन किया। और मिल मालिक ने, पुलिस और देशभक्तों को।

लारियों में संगीनधारी पुलिस दौड़ने लगी। हाकिम हुक्काम, पलक मारते ही मिल के फाटक पर जा विराजे। मजदूरों को, समझाया, धमकाया, घुड़काया। मजदूर न माने। उन्हें चलाने के लिये, पुलिस को आज्ञा दे दी। सिपाही भीड़ में पिल पड़े। किसी का सर, किसी का पैर, किसी का हाथ टूटा, तो किसी की पीठ सूज आई। मजदूर तितर-बितर होते हुये भी एकत्रित रहे। उनके नेता पहले ही बाँध लिए गये थे। वे वहाँ तक पहुँच भी न सके। हाँ, पहुँचे दावत के खुमार से बोझिल, देशभक्त और छोटे-मोटे कार्यकर्ता।

मजदूरों ने हाथ उठवा कर, अपना पंचायती नेतृत्व कायम कर लिया था। नेता जी अन्दर घुसने की छटपटाहट में न आव देख सके

ताव, झट पुलिस की लारी में खड़े होकर अपना भीषण भाषण प्रारम्भ कर दिया।......सुना है कि तुम लोगों ने हड़ताल कर दी है। अच्छा है लेकिन सोच-विचार भी लिया है। या दुश्मनों के चक्कर में पड़कर अपने पैर काटने के लिये तैयार हो गये। तुम सभी जानते हो कि हुकूमत को झुकाने, जुल्मों के विरुद्ध लड़ने और किसान, मजदूर की आजादी के लिये लड़ने वाली सबसे बड़ी जमात है तो हमारी जमात है। हमारी सरकार होने वाली है। तुम्हारी माँगें बिन लड़े ही पूरी हो जायँगी। अभी तूफ़ान उठाने हरताल करने की कोई आवश्यकता नहीं। तुम लोगों ने हमसे पूछा भी नहीं और हड़ताल कर दी। सन् १९४२ में जब हड़ताल होनी चाहिये थी तब यह तुम्हें धोखा देनेवाले सरकारी चापलूसों ने तुम्हें हरताल करने से रोका और अब तुम्हें निकलवाने और भूखों मारने के लिये हरताल करवा रहे हैं। तुम लोगों की अक्ल में पत्थर न पड़ जायँ। गद्दारों के जाल से अपने-अपने को छुड़ाओ। अरे! "हित अनहित, पशु पच्छिहु जाना।" फिर तुम तो इन्सान हो अपने हित को अपने दुश्मनों के हाथों क्यों सौंप देते हो। हम तुम्हें अपने अधिकारों के लिये नहीं मना करते। पर इतना अवश्य कहेंगे कि आग में न खेलो नहीं तो बिन मौत मरोगे। इन गद्दार देश-द्रोहियों से होशियार रहो।

मजदूर सन्नाटे में थे। सारा जोश, अधिकारों की लड़ाई की सचेष्ट भावना, जलती हुई मोमबत्ती की तरह पिघल गई। सब के मन भर गये।।

उभरते हुये सीने झुक गये। चेहरों में मुर्दनी का जैसा मातम छा गया। आपस में कानाफूसी होने लगी। हमारा नेता न आ सका, पहले ही पकड़ लिया गया, रास्ते में। तब तो फिर...... अब......अब क्या?

निराशा और ग्लानि के सैलाभ में मजदूरों का जहाज डूबने लगा। उन्मन मन से मजदूर सुन रहे थे, नेता जी के भाषण। पर कहीं से भी प्रकाश की ज्योति दिखाई न देती थी। बल्कि हर मजदूर की आँखों में अन्धकार और अन्धकार से उत्पन्न हुआ भय, दिलों को मसोस रहा था।

नेता जी कहते थे कहते ही रहे। यह हड़ताल कानूनी नहीं है। पहले नोटिस देनी चाहिये। नहीं सरकार हस्तक्षेप करेगी। तुम्हारी माँगें न पूरी हो सकेंगी। अनर्गल ढंग से काम करना बन्द करो। जानते नहीं हो हमारी जमात से मिल वालों की हवा सरकती है। डर के मारे यह लोग भी हमारे झंडे के नीचे आ रहे हैं। कौन ऐसा आरहा है जो हमारे आगे सर उठा सके। देखते नहीं हो कि आज हर मिल में हमारा झंडा फहरा रहा है। दो दिन बाद तो हमारी सरकार होगी। अगर तुम लोग इस तरह हरतालें करोगे तो जेलों में बन्द कर दिये जाओगे। तुम्हारे दुश्मन तुम से इसलिये हरतालें करवा रहे हैं कि आने वाली सरकार पहिले ही से मुसीबत में पड़ जाय। यह तुम्हारी उच्छृंखलता तुम्हारे ही नाश का कारण बनेगी। बाल-बच्चे

भूखों मर जायँगे । इस समय हड़ताल नहीं हो सकती । मिल मालिक यहीं पैदा हुआ है । यहीं रहेगा । उसका पैसा देश का पैसा है । हम नहीं चाहते कि मिल मालिक और मजदूर में झगड़ा रहे । दोनों के आपस में मिलने ही से देश का कल्याण होगा । जाओ, जाओ, सब लोग अपने-अपने काम पर जाओ । इस हुड़दंग के लिये तुम्हें निकाला न जायगा । लेकिन इतना तो तुम्हें मिल मैनेजर के सामने कहना ही पड़ेगा कि अब आगे से ऐसा न करेंगे ।

इतना, सब, सुनने के पहले ही अधिक मजदूर सरक गये थे । पर नेता जी अपनी धुन में न देख सके थे कि सुनने वाले, कितने हैं, उनके भाषण का क्या असर पड़ रहा है । बेबसी और अपने ही ऊपर की घृणा, मजदूर को मिल के अन्दर धक्का देकर लिये जा रही थी । बन्द मशीनों ने तो तुरन्त ही जोर पकड़ लिया । लेकिन मजदूरों का तन, श्लथ, पस्त, चकाचौंध आँखें और टूटे हुए दिल, भविष्य की आशंकाओं से बोझिल थे । डरते-डरते आपस में बातें करते, हड़ताल तो तोड़ दी गई । मिस्त्री, मास्टरों से दुश्मनी हुई । बोनस मिलने की तो दूर रही, छटनी अब रोके नहीं रुकती । अब तो जो कुछ होगा, भुगतना ही पड़ेगा । ये लोग मिल मालिकों से मिले हुये हैं । देखा नहीं हिरई के मामले में मजदूर सभा ने जोर न लगाया होता तो, पता भी न लगने पाता कि हिरई कैसे मरा । अरे उसकी लाश तक का पता न चलता । यही नहीं, यह मजदूर सभा तोड़ने में लगे हैं ।

अहमदाबाद की तरह यहाँ भी "मजूर-महाजन" चलाना चाहते हैं। और यह पुलिस वालों से भी मिले हैं। मज़दूर सभा के नेताओं को राह में ही गिरफ्तार करा दिया। नहीं तो हड़ताल तोड़ी जा सकती थी। इसी तरह मिल का सारा मज़दूर अन्दर ही अन्दर और धधक रहा था।

दस दिन बाद मजदूरों के नेता छोड़ दिये गये। सरकार उन पर किसी प्रकार का मुकदमा न चला सकी। मज़दूर अपने प्रिय नेताओं को, पा, फिर से चौगुने हो गये। हिन्दू मुसलमान का भेद डालने वाली नीति भी न टिक सकी। जेल से निकलते ही मजदूर नेताओं ने, कटनी, छटनी के विरुद्ध, मिलों और कारखानों के मजदूरों का आवाहन किया।

फूस में आग लग गई। धाँय-धाँय कर लपटें उठने लगीं। अब मज़दूर को कौन रोक सकता था। शहर के एक बहुत बड़े पार्क में मज़दूर सभा की तरफ से कान्फ्रेंस हुई। पचास हजार मज़दूर एकत्रित हुये। बेज़ुबान अशिक्षितों ने अपनी अपनी प्रखर चातुरी का प्रदर्शन किया था।

पार्क के किनारों और बीच-बीच में मज़दूरों की बस्तियों, घिनौनी, अर्धनग्ना मज़दूर औरतों और जन्म ही से मेढक की आकृति पाने वाले, बदनसीब बच्चों के चित्र और उनकी श्रम शक्तिपर किलोल करने वाले "अर्थ-पिशाच" की काली करतूतों के कारनामें दर्ज थे। मज़दूर

अपनी हीनावस्था को अपनी-अपनी आँखों से देखते, क्रुद्ध होते, इन्कलाब का उद्घोष करते। किन्तु मालिकों के सी० आई० डी० चित्रकार के पहचानने की खोज में दुबले हो रहे थे।

तड़ तड़ तड़ तड़ तालियों के साथ मजदूरों का कवि मंच पर से हुँकारने लगा। मजदूर सँभल-सँभल कर बैठ गये। जोश से बावले हो झूमने लगे। "अब मजदूर न रहने देंगे कोई दुश्मन खूनी", तालियों के साथ फिर इन्कलाब जिन्दाबाद की आवाज गूँज उठी। सब के सीने तन कर चौड़े हो गये। पचास हजार मज़दूर प्रतिशोधों के लिये उन्मुख हो उठा। संगीनधारी पुलिस कुछ न कर सकी। मिल मालिक के गुर्गे, दुम दबाये हाल-चाल लेते रहे। मज़दूर नेताओं की गर्जना से पचास हजार मज़दूर असली हालत को पहचान गया। हर मज़दूर ने हाथ उठाकर, मुक्का तानकर हड़ताल की घोषणा की।

दूसरे ही दिन सुबह जाते हुये राह से कवि और चित्रकार, लट्ठबन्द गुण्डों द्वारा घायल कर मिल मालिक के पास ले जाये गये। मिल मालिक चौपहलू कुर्सी पर बैठा अपने लठैत लाड़लों की राह देख रहा था। दोनों कलाकारों को देखते ही आँखें चढ़ गईं। मुँह फैलाकर दोनों को दबोच लिया। वे दोनों बेसुध थे। मिल मालिक के मुँह में प्रसन्नता नाच रही थी। उसको दिली मुराद पूरी करने का समय मिला था। वह अर्थ-पिशाच बन चुका था। एक बार दहाड़ा और ज़मीन पर पड़े हुये हुये चित्रकार को पैर के नीचे और कवि के बाल पकड़ दोनों को

लुंठित काया से बदला लेता हुआ उसी चौपहलू कुर्सी में भयानक बन कर बैठ गया। और तड़पता हुआ बोला।

अब फूँको प्राणों में प्राण, अहा ! हा ! हा ! कैसी कला है। अब करो कलाबाजी, देखो, देखो सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम् को देखो ! कैसे चित्र हैं ? कैसी कविता है ? गाओ इन्क़लाब के गीत गाओ। करो अब इन्क़लाब ! मज़दूरों के चित्र खींचो। अरे, अरे, गिरे क्यों पड़ते हो ? सँभलो, मुर्दा क्यों बने जाते हो, मजदूरों में जोश भरो ? मजदूरों को मेरे विरुद्ध, भड़काओ। अब फिर कहो "अब मजदूर न रहने देंगे, कोई दुश्मन खूनी" क्यों कवि, यह तुम्हारी आँखें अब भी तनी हुई हैं।

दिलेरो इन दोनों की आँखें निकाल लो। देर क्या करते हो। शाबास, शाबास, खूब ! खूब ! आओ मेरे पास आओ, लो यह गिन्नियाँ लो, मेरे लाड़ले लठैतो जिन्दा रहो। कोई कमी नहीं है। इन पाजियों को मिल गया मजा। क्यों कलाकारो ! देखो यह पेरिस की स्वर्ग सुन्दरी हौज के फौव्वारे में नग्न स्नान कर रही है। इसके अधरों का रस मीठा है। बदनसीब, पशुओं से भी गये बीते, मज़दूरों के पक्षपात का मजा लो। ओ हो, हो, हो, यह साले अब भी लिये हैं कविता और चित्र "अर्थ-पिशाच"। यह तो मेरा ही चित्र है। अच्छा-अच्छा, अब मैं अर्थ-पिशाच, अर्थ-पिशाच हैं।

२३ जनवरी, १९४६

चांदी का जूता

यह चाँदी का जूता है। जब चमड़े का जूता आदमी के सर पर पड़ता है, तब वह तिलमिला उठता है। लेकिन जब चाँदी का जूता सर पर पड़ता है, तब पढ़े लिखे विद्वान भी मारने वाले को देख कर, सर झुका देते हैं।

लक्ष्मी के लाड़लों के पास यही सब से बड़ा हथियार है। इसकी मार से साधारण, असाधारण, सभी मनुष्य पनाह माँगने लगते हैं। बिजली के करेन्ट से भी तेज, पवन से भी प्रबल, नक्षत्रों की चमक दमक इसके आगे बिल्कुल नहीं ठहरती। यह दमन और अमन सब के ऊपर चलता रहता है। यह चाँदी का जूता है। बड़ा ज़ालिम है। इसकी आस पास की गहरी रेखाओं, में, मृत्यु का खेल होता रहता है। यह मनुष्य ही नहीं देवताओं को भी बस में किये रहता है। यह चाँदी का जूता है।

कहते हैं कि बीस वर्ष के लगभग हुये, जब इसका जन्म कानपुर के एक मिल में हुआ था। मिल का मालिक अँगरेज था। हिन्दुस्तानी मज़दूर मिल में काम करते थे। जन्म लेते ही इस चाँदी के जूते ने, सैकड़ों मज़दूरों के प्राण ले लिये थे। निर्दोष मज़दूरिनें और मज़दूर धधकते हुये बैलट में झोंक दिये गये थे। देश के नेताओं ने आवाज़ उठाई थी, एक कमीशन नियुक्त हुआ था। इस चाँदी के जूते में ही वह शक्ति थी कि कमीशन बना और मिट गया। जिसके पास चाँदी का जूता था उसका कुछ न हो सका।

सुनते हैं कि कभी पुराने ज़माने में, दुर्भिक्ष के कारण राजा जनक को खेत जोतना पड़ा था। खेत जोतते समय धरती से सीता जी निकल आई थीं। ठीक उसी तरह आज हर एक मिल के अन्दर, समाज के नंगेपन को दूर करने के बहाने मज़दूरों को जोता जाता है।

उनकी श्रमशक्ति निचोड़ कर, इस तरह के चाँदी के जूतों का निर्माण किया जाता है।

यह चाँदी का जूता है। इसमें वह नशा है कि इसको सुँघाते ही, आदमी मदहोश हो जाता है। तेज से तेज चश्मा लगाने वाला भी, अन्धा हो जाता है। पंडितों, पादरियों और शेखों का तो कोई सवाल ही नहीं है। मन्दिरों, मस्जिदों और गिरजाघरों में छुपे हुये, अप्रत्यक्षदर्शी, भगवान, खुदा और गाड पर भी इस चाँदी के जूते की छत्र छाया रहती है। बड़े-बड़े देश भक्त, इसके डर से, लक्ष्मी के लाड़लों की पूजा किया करते हैं। उनकी हाँ में हाँ मिलाया करते हैं। बड़े-बड़े बारहाँ, गुन्डे और हाकिम हुक्काम तक, इसको सर झुकाते रहते हैं। अपनी अपनी खैर मनाया करते हैं। यह चाँदी का जूता है।

यह लक्ष्मी के लाड़लों की पहरेदारी भी करता है। दुनियां की मानिनी सुन्दरियों को विवश कर, लक्ष्मी पुत्रों की गोद में लाकर डाल देता है, केलि के लिये। फरफराती हुई साड़ियों में लिपट जाता है, वासना का मलिन मुख आक्रान्त करने के लिये। कच-कुच वर्णन के लिये, सरस्वती के सपूतों को अपनी कलाबाज़ी पर आकर्षित कर, वासनाओं की तृप्ति के लिये, भूमिका तैयार करवाता है. यह चाँदी का जूता है।

यह मीठा ज़हर भी है। जिसे आदमी हँसते हँसते पी जाता है। जान बूझ कर इसकी पकड़ में आता है। यह चाँदी के जूते का ही

तो प्रभाव है कि गान्धी जी के अनन्य मित्र देशभक्त बिड़ला जी ने मारिस कम्पनी और टाटा ने ई० के० इन्डस्ट्रीज (जो विलायती कम्पनियाँ हैं) के नाम देश का बेचनामा लिख दिया है।

देशभक्त, बिड़ला जी की मोटर का प्रत्येक पुर्जा विलायत में ही बनेगा, फिर भी कहलायेगा, हिन्दुस्तानी ? सोलह आने शुद्ध स्वदेशी। लोग कहते हैं कि इतनी साफ़ बात बिड़ला जी की समझ में क्यों नहीं आई। किन्तु इसमें देश प्रेमी बिड़ला जी की बुद्धि का क्या दोष है। असल में, सूरज की रोशनी में उल्लू को दिखाई नहीं देता। चाँदी के जूते का कुछ करिस्मा ही ऐसा होता है।

सैकड़ों मज़दूरों की मँहगाई और बोनस दबा कर, एक लाख रुपये का दान, पण्डित पंत और उनके साथियों के लिये, स्मरणीय दानी बन गया। पर यही क्या कम है कि पद्मपति की इस देशभक्ति के कारण, सर की उपाधि और स्मरणीय हो गई।

यही चाँदी के जूते की महिमा है कि गुन्डा एक्ट में शहर बदर किये गये नामी गुन्डे, तिरछी गान्धी टोपी लगा कर, खद्दर के उजले चोले में, अपने अपने पापों को ढकने में समर्थ हुए। उनके कुकृत्यों में देश भक्ति की मोहर लग गई। और वे मिल के फाटकों के मज़दूर नेता बन गये। गणेश शंकर ने अपने को कोई कम नहीं समझता। यह चाँदी का जूता है। यह सब कुछ कर सकता है। युग का विधाता है। मशीनरी की देन है। यह चाँदी का जूता है।

छाया-प्रेत

नींद नहीं आती, मन उकता रहा है, यह कौन ! कुछ नहीं, शीशे का प्रतिबिम्ब है। अच्छा कोई बात नहीं।

एक लाख, दो लाख, तीन लाख तक खर्च कर देंगे। रुपया है, किस लिये ! कमाया है किस लिए ! इसलिये ना कि समय पर काम

आये। पुजारी, पण्डे, वकील, बैरिस्टर, लेखक, कवि और यह अख़बार वाले तो हमेशा दुआ मनाया करते हैं। फिर सन्देह किस लिये ? सरकार को क्या पड़ी, वार फन्ड में और सही।

बस, यही ना, कि इतने·········उड़ जायँगे। तो क्या हुआ। इसका टोटा उसमें गया, बाप मरा घर बेटा हुआ। इधर से जायँगे, उधर से निकाल लेंगे। सब कुछ तो अपने ही हाथ है, फिर चिन्ता ही क्या ! ओह ? दो बजे, पर नींद नहीं आती।

आज दिन में भी तो नहीं सोये। सोते कैसे ! मैनेजर नमक हराम है। सख्ती से काम नहीं लेता। इतनी दूकानों से ·····आना चाहिये। फी अदत, इतने ···दाम बढ़ा देना चाहिये। जिसको लेना होगा, लेगा ! नहीं चला जायगा। मगर मैनेजर ? हाँ हाँ मैनेजर की तनखाह ? हाँ, हाँ कुछ बढ़ानी पड़ेगी, बढ़ा दी जायगी। कमायेगा तो इसी में से खायेगा भी ! मेरी गाँठ से कुछ नहीं ले जायगा। उसकी लड़की ? मनोरमा, सुन्दर, मोहिनी नहीं, नहीं, मनोरमा नहीं। ओह, तुम मर कर फिर आई हो, मुझसे कहने, पाप है, बुरा है, ऐसा न किया करो, इज्ज़तदार बनो, चल उधर, मैं तेरी नहीं सुनता। मुझे शिक्षा देने आई है, मर कर पातिव्रत बखानने आई है। औरत इसी लिये है, दासी है, चरणों की। देखती नहीं, नज़ाकत की पुतलियाँ, कूदती फाँदती चली आया करती हैं। नहीं, नहीं, तुम भी नहीं, मनोरमा भी नहीं, फिर कौन ! कुछ है तो, नींद नहीं आती।

परेशान हूँ। पलकों को न जाने क्या हो गया है। अरे, पुतलियाँ, भयभीत क्यों हैं ! यह दिल क्यों धड़क रहा है ! अच्छा जबरन आँखें बन्द कर लूँगा। देखूँ नींद कैसे नहीं आती।

मेरे पास, लक्ष्मी है। सब कुछ है। ऐश्वर्य है। पैसे में ताक़त है। सब कुछ है, मनोरमा ····· है। मीठी सी मुस्कान है, जादू है, मैनेजर की लड़की है, रुपया है, सब कुछ है। और, और, यह क्या ! छाया ! अरे,····· अरे······प्रेत-प्रेत, मैनेजर मेरी पलकों से ओझल होजा, नहीं, नहीं, मैं आँखें बन्द कर लूँगा। मैनेजर ! गोदाम सँभाल, चाभी सँभाल, प्रेत, प्रेत सुदर्शना प्रेत बन गया। मेरी पुतलियों में है। सर तोड़े डालता है। नींद हराम है, रात बेक़स है, लाशों के ढेर, प्रेतों का जमघट, अनाज, अनाज, कपड़ा-कपड़ा, मैनेजर ! चाभी सँभाल ! छाया प्रेत है, बड़ी-बड़ी आँखें हैं। बहुत बड़ी नाक है ! बड़े-बड़े दाँत हैं। लम्बे-लम्बे पैने हाथों से मुझे पकड़ना चाहता है। नहीं, नहीं मैं पकड़ाई न दूँगा।

कहाँ जाऊँ ! क्या करूँ ? बचाओ, मेरा पाप मुझे खाने को तैयार है। मैंने ही इनकी कपाल क्रिया की है। मैंने ही इन्हें मनुष्य से प्रेत का रूप दिया है। मैंने ही इनकी लाशों पर वैभव के महल बनाये हैं। मैनेजर ! मैनेजर ! दौड़ो, एक नहीं हजारों हैं। छाया है ! प्रेत है ! सच मुच, मेरे पाप, यह सब मेरे पाप हैं। अब तो, बच नहीं सकता। रात गम्भीर है। कोई उपाय नहीं है। मेरी लक्ष्मी, मेरा धन,

मेरा ऐश्वर्य, बेकार सब बेकार, बस-बस अब बस नहीं चल सकता।

लेखक, कवि, अखबार वाले और यह सभा, सोसायटी वाले सब मेरे ख़िलाफ़! न जाने क्या इन्हें हो गया है! यह शैतान! जिस पत्तल में खाते हैं उसी में छेद करते हैं। मैनेजर, मैनेजर, कह दो जायँ। सब मेरे सामने से दूर हो जायँ। यह सब यहाँ क्यों इकट्ठा हुये हैं। जनता, जनता, बड़े जनता वाले हैं। गंगा कसम, मैनेजर! इन बदमाशों को कभी ड्योढ़ी में न घुसने देना। गान्धी जी अनशन करेंगे। मेरे विरुद्ध, मेरे ख़िलाफ़! अच्छा करें, गान्धी जी अनशन। नहीं, नहीं मैं कुछ नहीं कहता। मैं सो जाऊँगा, मर जाऊँगा। ऐं मर जाऊँगा। नहीं, नहीं मैं कभी नहीं मर सकता। यह सिवाले, और यह टावर, यह दान फन्ड और यह धर्मशाले। मैं न मरूँगा मैं अमर हूँ, कभी नहीं मर सकता।

हाय, हाय, हर अख़बार में गान्धी जी कहते हैं "नरहत्या बहुत बड़ा पाप है।" दुनिया भी यही कहती है। फिर क्या सच मुच मैं इन सब का भागी हूँ? यदि मैं यह सब न करता तो, यह सम्पादक, लेखक, और कल्पना में उड़ान भरने वाले, कहीं जीवित दिखलाई देते। सब प्रेत बनते, जरूर प्रेत बनते। सम्पादक, लेखक, कवि, सब प्रेत बनते? मैनेजर, मैनेजर, छिपालो, छिपालो? सब प्रेत बनते? मैनेजर, यह सब प्रेत हैं। नहीं, नहीं, मुझे सो जाने दो, मुझे तंग न

करो। मैं तुम्हारे सब के हाथ जोड़ता हूँ। मुझे नींद नहीं आती। मेरी पुतलियों में घुसे हुये, छाया और प्रेत, दूर हो जाओ, मैं सोऊँगा, मुझे नींद नहीं आती।

भावो दर्शन

मैं सो रहा था।

और मेरे रंगीन सपने जाग रहे थे।

दिन भर की थकन थी, सपनों में उल्लास था।

पवन का हल्का सा झोंका आया, लगा-

पुतलियाँ हिलीं डुलीं। फिर क्या हुआ ?
मैं सो रहा था,
और मेरे रङ्गीन सपने जाग रहे थे।
स्वर में मादकता थी, मैं निस्तब्ध था।
स्वर कानों में अमृत ढाल रहा था।
मैं सपनों के स्वर्ण पक्षी के साथ साथ उड़ रहा था।
अमुक नगर मिला, राजा हीन रानी मिली।
छेड़े हुए पंचम में विरह व्यथित मुखर तान।
खिचने लगा मेरा मन ?
उठने लगे, मन में भाव। होने लगे, धीरे धीरे
अन्तर के हरित घाव। सहसा रानी चीख उठी।
मैं सो रहा था—
और मेरे रङ्गीन सपने जाग रहे थे।
वज्र द्वार टूटा, टूटी महलों की मीनारें।
लुटने लगे गुप्त तहखाने चारो ओर से।
क्रन्दन, कोलाहल से सपने आन्दोलित थे।
भीड़ थी—
भयानक थीं भाव भंगिमायें बुभुक्षितों की।
द्वारपाल, साथ में स्वयं विद्रोही थे।
आग लगी :—

एक साथ, नगर सब जलने लगा ।
लपटें सहस्र जिह्वायें खोल निकलीं । भस्मी-
भूत होने लगा कलुष पराक्रम का ।
भस्मी भूत होने लगा प्रबल पुरातन भी ।
जलती हुई बीणा के :—
तार तार ध्वनित थे ।
राग विद्रोही था ।
रानी विद्रोहिणी थी ।
संज्ञा हीन होता गया बढ़ता विद्रोह-
और संज्ञा हीन होते गये सपने आलोक से ।

बैल की रकम

तुझे कुछ पता भी है। मिट्टी भी सोने के मोल है। देखती नहीं जमाना कितना बुरा लगा है। अब की राम ही मालिक है। सोचा था कि इस साल गनेस का जनेऊ कर डालेंगे। सयाना हो गया है। पर अब वह भी नहीं हो सकता।

तुझे क्या। तू तो घर में बैठी बैठी मैके के सपने देखा करती है। होती किसी कुरमी, काछी के घर में तो पता लग जाता, आटा दाल का। जब देखो तब मेरी खोपड़ी पर सवार रहती है। मैं तेरे गहने निगल तो नहीं गया। जुआँ तो नहीं खेल आया। रण्डी बाजी तो नहीं की। तेरे और तेरे इन ढेर के ढेर भतारों को कहाँ से आता खाने को। देख मेरी दुश्मन न बन।

फिर वही? न मानेगी, मैं कहता हूँ कि मेरी खोपड़ी न खा। जा चली जा अपने मैके। मुझे तनिक भी परवाह नहीं है। ले जा अपनी यह भड़ेहर साथ में। मेरा सर खाने की जरूरत नहीं है। बैल न लेता तो जो कुछ खेत हैं वह भी बारह बाट हो जाते। न मानेगी लुच्ची कहीं की। पुरखों ने तेरे बाप का क्या लिया है जो उन्हें पलान रही है। उनका पानी उतार रही है। जा बैल बेच कर अपने गहने उठाले। मैं नहीं रोकता। कुछ मैं खा तो नहीं गया तेरे गहने। कहता तो हूँ कि अब न करूँगा गनेस का जनेऊ। सरसों, लाही, गेहूँ, चना जो कुछ भी होगा, सब बेच कर तेरे गहने उठा दूँगा। या फिर बैल ही बेचवाने में लगी है।

बलिहारी है औरत जात की। न आव देखे न ताव। जब खाने बैठो तब गहना, जब सोने जाओ तब गहना। यह नहीं सोचती कि यह गहना वहना सब अमीरों के चोचले हैं। अरी जब पेट में दाना नहीं जायेगा, तब धरा रहेगा यह सब गहना-गुरिया। सब आँतें सूख

कर कन्डा हो जायँगी।

लाख समझाओ पर इसकी समझ में नहीं आता। मिट्टी किये है मेरी जिन्दगी। अकेले होता मजा करता, जहाँ चाहता, चार टिक्कड़ डालता, खाता और प्रेम के साथ गुलछर्रे उड़ाता। बाप ने सोचा, लड़के का ब्याह हो, माँ ने सोचा पतोहू आये, बस डाल दिया कठ पींजरे, अब लेव राम का नाम।

जोड़ू को अपने गहनों की पड़ी है। फसल आने के पहिले ही रंग बिरंगे भूत मडलाने लगे हैं। चन्ना कहता था कि अब की सरकार फसल खरीदेगी, कन्टोल रेट पर। पटवारी, तहसीलदार, सब फसल नोट कर रहे हैं। गरीबों के दुश्मनों की बन आई है। जमींदार, मुखिया आदि अपने को बचाने के लिये दूसरों का अधिक लिखवा रहे हैं। पटवारी चाहता है कि उसकी पूजा की जाय। तहसीलदार चाहता है कि जेब भरे। जमींदार, रास्ता ढूढ़ा करता है, फँसाने के लिये, अपना उल्लू सीधा करने के लिये, चारो तरफ लुटेरों का डेरा है।

कुल जमा, दस बीघा जमीन, एक बैल की सौंपरि, क्या बेचें, और क्या रक्खें इन लोगों के पेट भरने को। सरसों लाही तो अभी दई के हाथ है। कहीं लसी लग गई तो फिर सब स्वाहा, सब चौपट, जीवन का खेल ही खत्म हो जायगा। कहीं पत्थर पड़ गये, तो फिर सर्वनाश !

अच्छा होगा। परेशनी मिट जायगी। तहसीलदार, पटवारी, जमींदार क्या लेंगे, कुदिक्का। इन सालों को भी जान पड़ेगा। नहीं नहीं, इन्हें क्या जान पड़ेगा। इन्हें तो सरकार से मिलता है। जमींदार के यहाँ तो खत्ते के खत्ते भरे हैं। मरही होगी हम जैसों की। अब देख लूँगा कैसे टैं, टैं, करती है। मेरे सात पुरखों तक को तारती है। बरसायल ? जब देखो तब एक न एक मुरगी का ऐसा अन्डा, धरती रहती है। उसे कुछ खबर है दीन ईमान को। अब जान पड़ेगा चोपे की लाड़िली को। रोज, रोज, मैका मैका चिल्लाती है। कह दूँगा ? जा, वहीं चोपे की छाती में होला भून। फिर यह बच्चे, गनेस, इतना बड़ा, पूरे तेरह साल का, जनेऊ होना है। अरे न होगा अभी तो कोई लड़की थोड़े है जो कोई छाती पकड़ लेगा। इज्जत चली जायगी। बैठा रहेगा, दो बरस और ? और, और, कहीं खेतों में भी कुछ न हुआ। पत्थर ही पड़ गये, तो, तो, मौत हाँ, हाँ, मौत होगी। लाशों के ढेर, जिन्दगी और मौत!! तूफ़ानों से खेल। खेत और बैल, बीबी और बच्चे पूरे तेरह साल का गनेस··· ··ऐं, ऐं, नहीं, नहीं, तो फिर, चारा, भूसा, वह भी, नहीं, बैल,······वह भी··· नहीं,···ऐं···जायगा। नहीं उसके गहने, वह मर कर भी मेरा पिन्ड न छोड़ेगी। मेरे सर पर सवार रहेगी। वह यही तो कहती है कि मर जाय दुनिया, भाड़ में जाय खेत और अनाज, और समेट ले, तुझे अकाल। मुझे समेट ले, मुझे, मुझे अकाल समेट ले। मैं भी

चला जाऊँ भुखमरी के पेट में। मुझे भी मार डालेगी। नहीं, नहीं वह उठा ले, अपने गहने। मैं अभी दे दूँगा बैल बेच कर बैल की रकम।

मेरा-परिचय

मैं किसान हूँ। बाबू बीस कोस से चल कर आया हूँ। दया करो, बाबू, राजा. मैं किसान हूँ। भानजी का ब्याह है। ईश्वर कसम, झूठ नहीं बोलता। किरपा करो बाबू जी। तीन दिन से भटक रहा हूँ।

हटते क्यों नहीं पीछे ? सीधे दुकान में चढ़े चले आते हैं। जान पड़ता है साले अन्दर घुस जायँगे। पहाड़ी ? साला देखता क्या है ? ढकेल दे इन सालों को नीचे।

जानता नहीं तुम सब ? हम नैपाली है नैपाली भुजाली मार देगा भुजाली। चुपचाप, नीचे सब उतर, उतर, नहीं उतरेगा, साला मानता नहीं, रेला करता है। हम भुजाली भोंक देगा।

अरे भुजाली ही भोंक देगा या कपड़ा भी देगा। देखो भय्या, भुजाली के बहाने मुझे ढकेल कर आगे न निकले जाओ। मैं अलख सुबह से यहाँ बैठा हूँ। और, और क्या मैं अभी-अभी चला आ रहा हूँ। तुम सुबह से बैठे हो तो क्यों नहीं ले लिया अभी तक। कौन रोके था।

तुम्हारे जैसे कितने ही आकर घुस जाते हैं। कुछ कहो तो अबे तबे करने लगते हैं। उजरा ठग ! मुझे देहाती समझ कर बेवकूफ़ बना देते हैं। तुम भी आये और बातें बनाकर आगे हो गये। हटो हटो, कब तक मैं पीछे भगता रहूँ। देखो अगर कुछ बके झके; तो मैं देहाती हूँ ? सर के बल इसी दूकान पर खड़ा कर दूँगा। फिर चाहे जो कुछ हो। तब समझ में आ जायगा कि गँवार कैसा होता है।

ये, ये गँवार ! देहाती ? लराई करता है, यह आदमी बहुत देर से खड़ा है। उसे पीछे करना चाहता है। मैं देख नहीं रहा। गुस्ताखी करता है। देहाती बनता है। चोर ? ढोंगी, देख ? मैं पहाड़ी हूँ ?

भुजाली भोक दूँगा।

भुजाली नहीं तू तो बन्दूक मार देगा। देखूँ कैसे भुजाली भोंकता है। चार रुपल्ली का नौकर भुजाली भोंक देगा। यहीं जान निकाल लूँगा। सुबह से बैठा हूँ। जान पहिचान के लोगों को आगे खड़ा कर देता है। रिश्वत लेता है। देहाती गँवार समझ कर, चोर, ढोंगी बतलाता है। भुजाली भोकने की धमकी देता है।

हाँ, हाँ, यह रिस्वत लेता है। अभी इसे अठन्नी दे दो, आगे खड़ा हो जाने देगा। अठन्नी नहीं अरे चवन्नी में, तुम चवन्नी की कहते हो, यह दुअन्नी में करता है। इसीलिये तो यह सब तिकड़म किया करता है।

तुम सब झूटा है। पाजी कहीं का? हमको घूस लेना बताता है। अब ऐसा कहेगा तो हम भुजाली भोक देगा।

क्या है पहाड़ी, किसको भुजाली भोंक रहा है। आज बड़ी भीड़ कर ली है। क्या सब जोड़े बँट गये! चलो, हटो रे? पीछे हटो, चलो, हटो नहीं तो हन्टर पड़ता है। चमड़ी तक खिंच जायगी। हम पहाड़ी नहीं हैं जो भुजाली का डर दिखलायें। हम हड्डी काट देंगे।

चीफ साहब! आइये, आइये, आदाब अर्ज! आज इधर कई दिन में देख पड़े। यहाँ तो जान की आफ़त है। कपड़े की दुकान क्या है, जान का सौदा है। जी में तो आता है कि दुकान बन्द कर दें। हर समय डर लगा रहता है कि कहीं दुकान न लुट जाय। अभी,

अभी अगर इस भीड़ के ही कुछ भले आदमी हमारी और पहाड़ी की मदद न करें तो फिर क्या देर थी दुकान लुटने में। मैं तो बाज आया चीफ़ साहब ! ऐसे कन्ट्रोल से।

अब आप बँटवा दीजिये, देख लूँगा, कौन साला गड़बड़ी करता है। आप बँटवाइये तो। अच्छा किया जो बाँटना बन्द कर दिया। देखो मुझे आठ जोड़े चाहिये।

घर से लोग आ गये हैं। वे खड़े हैं। बुलाये लेता हूँ। चल रे ? ये, ये, उधर से, अच्छा तुम इधर ही से। हाँ, हाँ, लाला जी।

चीफ साहब मैं बीस कोस चल कर आया हूँ। अलख सुबह से बैठा हूँ। भानजी का ब्याह है। जिसे देखो वही मुझे पीछे ढकेल देता है। हुजूर ! मालिक, दरोगा जी, मुझे दिलवादो मैं तुम्हारे हाथ जोड़ता हूँ। बीस कोस चल कर आया हूँ।

क्या मैं सब का ठेकेदार हूँ एकआध को दिलवा दिया। बस लग गये, चीफ साहब, चीफ साहब, यहाँ चलकर कौन नहीं आया। चल हट खोपड़ी न खा, सब को जरूरत है। मुफ्त में किसी को हड्डी तुड़वाने का शौक नहीं है। देख लो ? यह है ! अगर किसी ने लाइन तोड़ी तो यह हन्टर पड़ेगा। क्यों बे साले, यह रेला, उधर रहो, नहीं मानते साले ? अरे, अरे, मुझे तो निकल जाने दो। लाला जी दुकान बन्द कर लीजिये। मैं यहाँ हड्डी न तुड़वाऊँगा। हाँ, मुझे तो दे दो, अच्छा, अच्छा, फिर, फिर ?

हाय राम ! मर गया। मार डालो, अरे कोई······हाय, हाय ! अरे दइया मर गये। देखा भीड़ का मजा, मिल गया जोड़ा।

अरे अब जिन्दगी भर के लिये पैर गया। निकल गया ठेला ऊपर से ना। यह साले इधर से क्यों लाते हैं। हाँ, इधर से ठेला निकालना बन्द कर देना चाहिये। रोज कोई न कोई घटना होती है। कोई देहाती है। कपड़ा भी नहीं मिला बेचारे को। अब कोई पुरसां हाल नहीं है कि ले जाय बेचारे को अस्पताल। हालत अच्छी नहीं है। पहिया जाँघ के उपर से निकल गया है। यह साले दूकानों पर खड़े खिल्ली उड़ा रहे हैं। चोर, जालिम, लुटेरे, गरीबों के दुश्मन।

हँसें नहीं तो क्या और रोयें। क्यों साले मरते हैं, यहाँ आकर, तुम्हें बड़ी दया हो तो ले जाओ अस्पताल। बेकार का जमाव मत लगाओ यहाँ पर !

आ गये कम्युनिस्ट ! कौन ? कौन ? कम्युनिस्ट ! वह क्या हैं, दो-तीन, इनको देखते ही सेठों की नानी मरने लगती है। यह लोग किसी के लल्लो-चप्पो में नहीं रहते। खरी कहते हैं। सब को सुनाते हैं। बड़े निडर, लगन के होते हैं।

हाय बापरे, किसका मुँह देख कर चला था। अब नहीं सहन होती पीड़ा। मरा, मरा, बचाओ बचाओ। ताँगा लाओ दौड़कर, बुरी चोट है। सेठ जी अपना ताँगा दे दीजिये। अभी वापस आजायगा। यहाँ नज़दीक कोई ताँगा नहीं है। बेचारे के प्राण बच जायेंगे।

क्या घोड़ा नया है ? अभी ठीक चला नहीं, कहीं मोटर, इक्का से लड़ जायगा। तुम न मर गये, अब तक इसके लड़ जाने से। आ गया ताँगा, कौन लाया, अच्छा आप, आप धन्यवाद ! लो उठाओ, आनन्द, माधो, सँभाल कर ऊपर से, उठाओ बेहोश है, जल्दी करो। आप भी चलेंगे। आइये, उधर से इसके उस पैर को थाम कर बैठ जाइये। चलो देखो सँभाल कर हाँकना।

यह बनिये पूरे कसाई हैं। सालों में दया छू तक नहीं गई है। मुझसे तो झगड़ा होते होते बचा। कम्युनिस्टों के नाम पर नाक भौं सिकोड़ते हैं। चूँकि वह गरीबों का पक्ष लेते हैं। इनकी पोल खोलते हैं। देखा साले ने ताँगा नहीं दिया।

मरा, बेटी मरा ? अब तुझे देख भी न सकूँगा। आह, आह ! नहीं दादा, देख सकोगे, अच्छे हो जाओगे। हम लोग अस्पताल लिये चल रहे हैं। तुम लोग, तुम लोग, कौन ? तुम लोग।

डा० साहब इसे जल्द देखिये, ठेले से कुचल गया है। चोट गहरी है, पहले इन्जेक्शन दे दीजिये। डाक्टर साहब, देहाती है, किसान जान पड़ता है। गरीब है, डाक्टर साहब।

क्या ? इन्जेक्शन क्या लगाये, अब इसमें कुछ नहीं है। आसरे, आसरे, यह तो गया। कुछ पता भी नहीं कहाँ का है। तुम जरा इसकी जेबों में देखो शायद कुछ न कुछ पता चलाने के लिये मिल जाय।

एक पर्ची, बस, पन्द्रह रुपये पर्चे में लिखा है। चार आने की हल्दी चार आने की पीपल, एक नारियल और गोमती के लिये पेरी पन्चिया। ओह, लड़की का मामा था। गोमती का ब्याह था।

भूख

भूख-भूख, हाँ मुझे भूख लगी है। कल से तुम बारबार कह रहे हो कि अभी लाये, अभी लाये, पर अभी न जाने तुम्हारा कब होगा।

मुझे भूख लगी है। दिन गया, रात गई, फिर दिन आया और साँझ होने को है। तुम बराबर टाल रहे हो और मुझे भूख लगी है।

अरुन्धती के घर का दीपक जल रहा है। जाला है, किन्तु मैं अन्धकार में हूँ। मेरे घर में अँधेरा है। दीपक है पर तेल नहीं, तुम कहते हो सो जाओ, पर मुझे नींद नहीं आती। तुम चाहते हो कि मां की तरह मैं भी सो जाऊँ। नहीं मैं माँ की तरह नहीं सो सकता। मुझे माँ की तरह सोने में डर लगता है।

वह भी तो भूखी थी। पाँच रुपये के पाँच सेर चावल, चार प्राणी और पन्द्रह दिन, अपना पेट काट-काट करके ही तो बिताये थे। मेरे लिये. तुम्हारे लिये, वह भूखी रही। न जाने क्या-क्या उसे सहना पड़ा ? उस दिन भी अरुन्धती के घर का दीपक जल रहा था। और मेरे घर में अँधेरा था। माँ भूखी ही सोई थी, फिर सोती ही रही।

मुझे भूख लगी है। तुम मुझे भुलावा देते हो भय्या ? मैं भुलावे में नहीं आ सकता। मुझे भूख लगी है। लाओ जरा नमक ही खाकर पानी पियें। मुझे भूख लगी है।

क्या कहा नमक भी नहीं ? अच्छा रहने दो। क्या कहा तुम जाते हो ? कहाँ ? नहीं, नहीं भय्या ! तुम वहां मत जाना ! बाबू जी, हाँ, बाबू जी वहीं गये थे, फिर लौट कर नहीं आये। यही तो सुना था कि खोपड़ी में डन्डा लगा था, नाक फट गई थी। और वे वहीं……फिर उनका पता भी न चला। उनके दर्शन भी न हुये। माँ अन्तिम समय उनका नाम लेते-लेते सो गई। नहीं भय्या, नहीं तुम वहाँ मत जाना

पर मुझे तो भूख लगी है।

अरुन्धती के घर का दीपक आज भी जल रहा है। मेरे घर में अँधेरा है। ऊपर आकाश है, झिलमिलाते हुये तारे हैं, तारों का धुँधला प्रकाश है जो मुझे अपनी ओर खींच रहा है। भय्या, भय्या, रोओ मत मुझे भूख लगी है, भूख ....।

समस्या और समाधान

क्या कहा ? एक कतार में ? नहीं, नहीं। यह कैसे हो सकता है। मैले, कुचैले, नीच, झल्ली वाले, कहार, जेबकट, और चोरों के साथ, जिन्हें शर्म नहीं, हया नही, और यह गन्दी औरतें घिनौनी, बदसूरत, कमअक्ल, कुतियों की तरह दाँत निपोरती हैं। सभ्यता की मौत ?

आंखों को बुखार । हिन्दुस्तान, हिन्दुस्तान ।

चलते क्यों नहीं ? एक कतार में खड़े हो । नहीं, नहीं मिलेगा । डिसिप्लिन, अनुशासन । भेड़ों की तरह, धक्का-मुक्की हाय मरी, राम, राम, बेटा, जईफ़ हूँ, मर जाऊँगी, मुझे दे दो ।

अभी ६ नहीं बजे । चलो एक कतार में । कहता हूँ अभी नहीं मिलेगा । दूर हटो, दूकान न घेरो, नहीं सुनते । अच्छा लो, आओ उधर ! अब भी नहीं, पुलिस बुलाऊं । बदतमीज़, नाली के कीड़ों ।

६ बजे, कसमकस, इसको मार, उसको ढकेल, मुनीम जी, ओ मुनीम जी, नमस्कार ! उधर से आऊँ । अच्छा आया । कितने दूँ । नहीं, नहीं, नम्बर से मिलेगा । अच्छा, सुनिये तो । सुनूँ कि काम देखूँ । जल्दी है, आफिस से सीधा आया हूँ ? तो मैं क्या करूँ ? नहीं भाई, नहीं, मुनीम जी दया होगी । दया लेकर ओढ़ूँ या बिछाऊँ ? जाइये कतार में ।

ओह, जान-पहिचान वालों को इशारों से, अधिक पैसों के लिये रिश्तेदारों की तरह दूकान में दामाद की तरह बैठ कर, चुपके, चुपके, क्रूर व्यवसाय, आँखों में धूल । आइये इन्सपेक्टर साहब ? हटो, हटो, हटते क्यों नहीं ? निकल आने दो । इधर औरतों की तरफ से । दो आदमी और हैं, मेरे दोस्त हैं । इन्हीं की ग़रज से तो मुझे भी । अच्छा, अच्छा, बड़ी भीड़ होती है । भीड़ क्या ? न जाने साले कहाँ लंका के छोर से आकर मरते हैं । बड़ी कृपा हुई, चलते हैं ।

आह ! आफत है, मुसीबत है। एक जनाने जोड़े के लिए। वह, यहाँ ? घर से निकल कर, इस भीड़ में, मेरे रहते, नहीं कभी नहीं, फिर कतार में। बिल्कुल आखीर में, लम्बी हैं, घन्टों लगेगा। कोई चारा नहीं।

दूकानदार खद्दरपोस है, ईमानदार होगा, देशभक्त होगा। परेशानी न होगी। मगर, मगर, पैसा ? हाँ, हाँ, अधिक पैसा सही। पुलिस वाला, हाँ, हाँ, पुलिसवाला करता तो है। धोखा, धोखा, बिल्कुल धोखा। तीसरी कतार में, अच्छा, अच्छा। यह सब साले बीच ही में घुसे जाते हैं। बुरी बात।

भीड़, बढ़ी, चलो आगे चलो। हाँ ठीक तो है। बढ़ो, बढ़ो बढ़ते क्यों नहीं ? आह रेला है। पुलिस वाले, कर्मचारी, निरंकुश, पैसे के लिए, चोर, लुटेरे, डन्डे, बेंत, औरतों और आदमियों पर तरस नहीं, जल्लाद।

ऐं यह कौन ! ब्लेक मार्केट खत्म करने के लिये, गाली, मार, और बेइज्जती से बचने के लिये, मुहल्ला कमेटियाँ बनाओ, एक हो, एक हो।

झूठ बिल्कुल झूठ ! दूकानदार के दूकानदार, सफेद पोश, झूठ बिल्कुल झूठ ! आह रेला है, मुझे निकलने दो। अरे बापरे। अब निकल भी नहीं सकते ! नौकरशाही का इन्तजाम, दूकानदार, इन्सानियत का कोढ़। मुनाफे के लिये, कागज के टुकड़े बटोरने के लिये।

कर्मचारी, दूकानदार को मालामाल करने के लिये, चन्द पैसों के लिये, छाती पर तूफान । गुलामों, आज़ादी के इच्छुक, खद्दर की आड़ में दूकानदारी, ब्लैक मार्केट, उपाय नहीं, दृष्टि नहीं, रहम और प्यार नहीं । शैतान, जिन्दगी के दुश्मन ।

आह, सर में चोट, खून । एक जनाना जोड़ा । घर से निकल कर वह यहां, इस भीड़ में, मेरे रहते । नहीं कभी नहीं, तो फिर मैले-कुचैले नीच झल्ली वाले, कहार, जेबकट और चोरों के साथ ।

हाँ, हाँ, ब्लैक मार्केट ख़त्म करने के लिये, मंहगाई मार, और बेइज़्ज़ती से बचने के लिये, एक हो, एक हो !

चिन्तना

बरसात खत्म हो चुकी है। काले-काले बादल धरती में समा गये हैं। आसमान बिल्कुल साफ़ है। किन्तु :—अभी तक हम स्वतन्त्र नहीं हुए। युद्ध चल रहा है। सेंमल के पेड़ की चिड़ियों की मनोरम बोली कुछ देर के लिये मुग्ध कर लेती है। मैं भूल जाता हूँ, उनके कलरव में

उनकी फुदकने की क्रिया में। लेकिन फिर भी नहीं भूल पाता।

पराधीनते ? तू कितनी जंजालमय है। युद्ध चल रहा है, मनुष्य, बन्धनों से मुक्त होने की अन्तिम लड़ाई लड़ रहा है। मुक्त हो रहा है। मगर तू ? मेरे इर्द-गिर्द, अभी अपना जाल फैलाये हुये है।

बेशर्म ? हया न कर, बाज आ। इतिहास के पन्ने के पन्ने तेरी काली करतूतों से रंगे हुये हैं। तेरा सर्वनाश समीप है। मनुष्यता अब कुचली नहीं जा सकती। जिन्दगी एक नया ताज पहिन चुकी है। पराधीनते ? अब समय नहीं है। अपनी करनी पर फिर विचार कर ले। संभल जा ? हाँ, इतना तो कर, कि आज़ाद होने के बाद भी मनुष्य कभी न कभी तेरी याद कर ले।

यह हिटलर, चर्चिल, ट्रूमन, स्टमृस, और यह एमरी, तेरे दूत ? तेरी बिडम्बना की खाल ओढ़े, मनुष्य की स्वतन्त्रता के गीत गा रहे हैं। और झोंक रहे हैं, युद्ध की धधकती हुई आग में, नौजवानों को। सार्वजनिक सम्पत्ति को बालू की तरह जला रहे हैं। साम्राज्य लिप्सा के लिये, तेरी रक्षा के लिये, तुझे, अचल और अडिग बनाये रखने के लिये ? पर इनके यह स्वप्न कोरी मृग तृष्णा, इनके और तेरे लिए घातक सिद्ध हो रही है।

इटली, युगोस्लाविया, हंगरी, रूमानियाँ, बलगेरिया पोलेण्ड और फ्रान्स, बेल्जियम और ग्रीस की पददलित जनता, पिछली भूलों का प्रतिशोध ले चुकी है। तुझे मिटा कर स्वतन्त्र हो चुकी है। शेष भागों

की जनता, तेरे दफ़नाने के लिये, खाईं खोद रही है। तुझे मिटाकर आज़ाद होने की पूर्ण प्रतिज्ञा कर चुकी है।

यह तेरे दूत तेरे गीत गाते रहेंगे। और तू सदा के लिये ज़मीन की हजार तहों के अन्दर दबा दी जायगी। फिर तेरा पता भी न चलेगा। फिर तू किसी को छल भी न सकेगी और न किसी के प्राण ही ले सकेगी।

बरसात खत्म हो चुकी है। काले-काले बादल धरती में समा गये हैं। स्वतन्त्रता का सूर्य फिर चमक उठा है। मैं सुबह की लाली से भीगी हुई सेमल के पेड़ की चिड़ियों से बातें कर रहा हूँ। उनके स्वर में स्वर मिला कर स्वतन्त्रता के गीत गा रहा हूँ।

कोयल बोल रही है

कोयल बोल रही है। मेरे प्राणों में हलचल है। उर में टीस है। कोयल बोल रही है।

वह अभागा बिन कफ़न के ही भैरों घाट जा रहा है। युग की बलिहारी है। पुलिस का जोर है, मसीन जर्जर हैं। घूस है, कपड़े का

अभाव है। ब्लैक मार्केट है, कन्ट्रोल उखाड़ने की चेष्टा है।

कोयल बोल रही है। सोई हुई याद हरी हो उठती है। मैं न जाने क्या क्या सोच रहा हूँ। अतीत को सामने रख भविष्य का चित्र बना रहा हूँ। वर्तमान, हाहाकार, रुदन, प्रलाप, अमीर, गरीब, लूट-खसोट शोषण-रोदन और युग की असमानता की प्रतिध्वनियों का प्रतीक, वर्तमान मेरी आँखों के सामने है। कोयल बोल रही है।

मैं किसी अप्रत्याशित घटना की बाट जोह रहा हूँ। मेरा प्रिय मेरे समीप आ रहा है। राजनैतिक जिच है, गतिरोध, टूटता टूटता रह जाता है। मैं अपने प्रिय को साथ ले आगे बढ़ना चाहता हूँ। राग-द्वेष संघर्षोन्मुख हो रहे हैं। मैं संघर्षों से होड़ ले रहा हूँ। कोयल बोल रही है।

मजदूरों का दल का दल, इन्कलाबी गीत गाता हुआ मिल में काम करने जा रहा है। उत्साह है, जीवन है, युग की पुकार है। कोयल बोल रही है।

सोई हुई शक्तियाँ जागरुक हो उठी हैं। अधिकारों को पहिचान चुकी हैं। संगठित हो रही हैं। दिन फिरने वाले हैं। कोयल बोल रही है।

कशमकश

नहीं लाये भय्या ! कहते थे कि कल ले आयँगे। न जाने कितने कल हो गये। तुम मुझे योंही टालते रहते हो। न लाना हो तो साफ क्यों नहीं कहदेते। सात दिनों से चिथड़ा लपेटे फिरती हूँ। स्कूल से गैर-हाजिर हो रही हूँ। परीक्षा सर पर है। बोलो भय्या ? आज ला दोगे।

आरती का ब्याह है। घर में चहल पहल है। न जाने कहाँ से नाते, रिश्तेदार आये हैं। किवाड़े की साँसों से देखकर जी भर लेती हूँ। मन मसोस कर रह जाती हूँ। छुम, छुम, छुम, छुम, खनन, खनन, इधर आना वासन्ती ? यह वासन्ती कौन है ? शायद आरती की मौसी की लड़की है। हाँ शक्ल भी तो वैसी ही मालूम होती है। अनारकली की इकलाई पहिने है। बड़ी अच्छी है। चौड़ी किनार की है। भय्या, भय्या, सुनो तो, सुनते ही नहीं ? फिर चले जायँगे, मिल से आठ बजे लौटेंगे, आज भी धोती न आ सकेगी।

अच्छा न लाओ। इनके लिये रोज भीड़ लगी रहती है। धक्का-मुक्की होती है। आपस की टक्कर से शरीर रबड़ की तरह बढ़ता है। कहते हैं कि पुलिस की मार पड़ती है। सरे तिनहे तक माँ बहिन की गाली दे डालते हैं। सर फटते हैं। तो फिर रहने दो। न जाओ भय्या ? मेरे पीछे कहीं···तुम्हें···नहीं, नहीं, ऐसा न हो भगवान ?

चर्खा कातूँगी, रुई लादो। परीक्षा तो अब दे भी नहीं सकती। मगर, मगर, चर्खे से कहाँ तक पूरा होगा। मुन्नी, अम्मा, बाबा, भय्या और रम्भू का तन कैसे ढकेगा ?

क्या कहा ? मोहन का नाना मर गया कफ़न के लिये कपड़ा नहीं मिलता। लाश सड़ रही है। क्या बिना कफ़न के ही ले जायँगे। ओह कैसी दुर्दशा है। खौफनाक हालत ? निकम्मी नौकरशाही इन्त-जाम नहीं कर सकती। न जाने कितनी माँ बहिनों को नंगे रहना

पड़ता होगा। यह मुसीबत के दिन। बंगाल, बंगाल में भी तो यही हालत हुई थी। लाखों आदमी मौत के मुँह में समा गये।

माँ बहिनों को एक एक दाने के लिये इज्ज़त बेचनी पड़ी। घूस, चोर बाजार, मुनाफाखोरी, आँखों में धूल झोंक कर लूट, धर्म की आड़ में ढोंग, नरहत्या, ढोरों की सी जिन्दगी। यही सब तो, —वहाँ भी·· ·· हाँ, हाँ, इसी ने यह सब आफत ढाई थी। तब फिर क्या ? यहाँ भी वही सब हालत। नहीं, नहीं, यहाँ नहीं हो सकता।

दुनिया आगे बढ़ रही है। सबेरा हो रहा है। लेकिन यहाँ, यहाँ तो नेता अब भी बन्द हैं। अपनी सरकार नहीं। बेबसी ग़ुलामी, गतिरोध और कशमकश।

अरे, अरे, यह क्या किया तुमने भय्या। तुमने मेरे लिए, मेरे पीछे, एक जोड़ा धोती, संभलो, संभलो, दौड़ो कोई डाक्टर, सर में चोट, खून, खून, भय्या, भय्या।

टेली-फोन

हलो हलो, नहीं मिलता, हलो, हलो, हाँ, आप कहाँ से बोल रहे हैं। नहीं, मैं नहीं चाहती, मिस्टर दुरगानी को। अच्छा, अच्छा, न जाने क्या हो गया है, टेलीफोन को! मिलते, मिलते, मिलता है तो किसी दूसरे का निकलता है। सब के फोन चल रहे हैं। इनके फोन को न जाने क्या हो गया है।

ऐं, क्या ? आवाज़, कैसी ? हमले की विसिल ? जापानी बम बरसायेंगे। ओह ! अरुण, तुम कहते थे कि जापानी आ रहे हैं आज़ादी दिलायेंगे। तुम कैसे कहते हो यह सब ? जापानी बम बरसाने आ रहे हैं। कलकत्ता भय से डगमगा रहा है। टेलीफोन, अच्छा, हाँ, हलो, हलो, कहाँ से, क्या, क्या ? डलहौजी स्क्वायर नहीं है यह। आपने गलत मिला लिया है। डलहौजी स्क्वायर में ?···हमला, ओह, आगये जापानी, डलहौजी, स्क्वायर में हमला। क्या हुआ होगा। फोन मिलाऊँ, हलो, हलो, नहीं बोलता। दूकान से देखूँ,···ओह सब के खराब हैं। घर में कोई आदमी नहीं, सब औरतें ही औरतें हैं। क्या हुआ होगा डलहौजी स्क्वायर में। नहीं और कुछ होगा, शायद मैं गलत समझ गई। मगर, आवाज़, भर्राई हुई, उन्हीं की जान पड़ती थी। कैसे जाऊँ। पिता जी, चाचा जी, कोई मिल, कोई दूकान में होगा। कार नहीं फिर क्या करूँ। अगर कहीं यहाँ भी हुआ तो, तो······फिर पिता जी, लालच के मारे सब की मौत बुला रहे हैं। मिल और दूकान के फेर में हैं। अरुण तो कहते हैं कि सुभाष बाबू आ रहे हैं। तब फिर यह भगदौड़ क्यों ? स्वराज हो जायगा, खुशी होगी। घर घर घी के दिया जलेंगे। द्वार द्वार पर बन्दनवार और स्वतंत्रता की पूजा। स्वतंत्रता के पुजारी, और बम मलाया और सिंगापुर की दुर्दशा, नहीं, नहीं झूठ, यह भी लुटेरे, वह भी लुटेरे। अरा रा रा, धाँय, धाँय, आ गये जापानी ? भागो सेल्टर

में। माँ, माँ, भाभी, रो मत, बच्चों को सँभाल। सब लोग कान बन्द कर लो। आँखें बन्द कर लो। चुप चाप लेट जाओ। सड़क से दौड़ कर कोई मत निकलना।

माँ, यह, बम, गोले, बड़ी तेज आवाज़, अब न बचेगा कलकत्ता अरुण अब न बचेगा कलकत्ता। अब तो मौत से मुकाबला है। तब फिर क्यों डरें। तुम कहते हो मदद करेंगे। यह हमको मार कर हमारी लाशों को आज़ादी देंगे। फिर बिसिल, हमला खत्म। पता नहीं कहाँ क्या हुआ? क्या कहती हो भाभी अंगरेजों की तोपों की आवाज़ थी। नहीं तोपों की आवाज़ के पहिले जापानी जहाज़ों की आवाज़ थी। फिर बम गिरने, गरजने की और फिर उसके बाद अंगरेजी तोपों और जहाज़ों की आवाज़ आई है। क्यों माँ? देखो माँ का भी ऐसा ही ख्याल है। अरे नौकरों का कुछ पता है। चल रे सोना। अरे अब तो निकलो, अब बम नहीं फटे पड़ते हैं। जान सब को प्यारी है। यहाँ सामने सड़क पर पड़े पड़े भूखों मरा करता था वह बुड्ढा, लेकिन उसे भी मरने का डर है। सेल्टर में घुसा था।

सोना देख तो बाबू आये कि नहीं, हाँ अभी कार, कार की आवाज़ तो नहीं आई। अब हम लोग न रुकेंगे यहाँ। माँ तो कई दिन से कहती है पर बाबू की समझ में नहीं आता। मैंने भी कहा था कि देश नहीं देखा, देख आयेंगे। अरुण भी चलने को तैयार थे।

आ गई कार। देखो तो कौन आया? बाबू, बाबू क्यों? अब

तो चलोगे। मेरा कहना ही न मानते थे। क्या कहा ? डलहौजी स्क्वायर में, बस्ती, की बस्ती, सैकड़ों आदमी····· ओह पिता जी फोन मिला कर देख लीजिये। मैंने बहुत मिलाया, नहीं मिलता। अरुण डलहौजी स्क्वायर में ही तो रहते हैं। अच्छा नहीं मिलता। पिता जी अब तो शान्ति होगी, आप कार से पता लगा लेवें। उनका क्या हुआ ? बेचारे बड़े मुसीबत में होंगे।

क्या कहा ? अब वहाँ जाने का मौका नहीं है किसी तरह शहर से बाहर हो जाना चाहिये। अभी तो शुरुआत ही है। आज रात में न जाने क्या हो जाय। हो जाय जो कुछ होना हो, मैं तो अरुण से जरूर मिलूँगी। क्या हुआ होगा उनका। पिता जी मैं तैयार हूँ, लेकिन······उनसे······हाँ-हाँ, उनसे······मुझे न रोकिये, मैं सब सामान ठीक कराये देती हूँ। सोना ! चलरे, सामान समेट, पिता जी मैं गाड़ी छूटने के पहले स्टेशन आ जाऊंगी। क्या टेलीफोन ! ले ले, तू इसे संभाल तो। शायद उनका·····हो। भगवान·····उनका ओह ! कौन ? हलो-कहाँ से, अस्पताल ? क्या है ? ऐं······क्या ? अरुण बेहोश है ? शरीर झुलस गया ! बस—इतना ही कह सके आह ! २७०६ से प्रभा को बुला दो। मैं उन्हें छोड़ कर न जाऊँगी। पिता जी, माँ, भाभी और सब लोग जायें, मैं न जाऊँगी। उनके बिना मैं कैसे रह सकती हूँ। एक कालेज में, इतने दिन, मधुर मधुर स्मृतियाँ, मीठी मीठी बातें, सुनहले सपने, ओह ! जापानी बम, तुम

कहते थे, जापानी मदद करेंगे। नाश हो जापानी बमबारी का। पिता जी, पिता जी चलो, जल्दी चलो ! अरुण अस्पताल में है। [illegible] चोट है।

ऐं ऐं, यह क्या कह रहे हैं, आप-पिता जी अभी तक तो कभी आपने इस तरह से नहीं कहा। पहले ही क्यों न कह दिया था? क्या आप नहीं जानते थे। मैं सब कुछ सुनती थी, नहीं तो आज ऐसा न होता। अब मुझे कलंकिनी न बनाइये पिता जी ! मुझे जाने दीजिये। उनके सिवा······मुझे अब और कहीं, कुछ नहीं। श्यामू, तू चल मेरे साथ, मैं ड्राइव कर लूँगी। तू चल तो, देर न कर। नहीं जायेगा। इतनी जान प्यारी है। मैं नही रुक सकती, मुझे मत रोको। अब मुझे कोई नहीं रोक सकता, जापानी बम भी नहीं रोक सकते टेलीफोन ? कैसे हैं, अच्छा अच्छा, ठीक है, प्रभा को बुलाते हैं। पिता जी ! अगर आप कार नहीं देते तो मैं पैदल जाती हूँ, अब मुझे कोई नहीं रोक सकता।

कार को जाने क्या हो गया है। रफतार नहीं पकड़ती। तेज़······ और······तेज़, अरुण ! मैं आ रही हूँ। तुम कहते थे, जापानी मदद करेंगे, तुम्हीं को शिकार बनाया। मुझसे नाराज़ हो जाते थे, जब मैं कहती थी कि देश हमारा है, उसके लिये हमें तैयार रहना चाहिये। आज़ादी नहीं। गुलामी का रूप अवश्य बदल जायेगा। पर, तुम,

न माने, अब तो अक्ल आगई अगर अरुण बम से……, नहीं नहीं, कुछ नहीं। सब ने साथ छोड़ दिया, अब कोई नहीं। अरुण, अब, अब तुम्हें कुछ……मैं आरही हूँ, राह में हूँ। आई, देर नहीं। अरुण! तुम्हारे बिना मैं कैसे रह सकती हूँ। अब-अब शायद तुम मेरी बातों के बारे में विचार करते होगे। कालेज के तूफ़ानी असर में तुम भी थे; तुम्हारा दोष नहीं। समूचे देश में १६४० की प्रतिक्रिया की प्रक्रिया होगी। सिद्धान्तवादी, अपने अपने सिद्धान्तों की रक्षा के लिए मर मिटेंगे, मगर-मगर, देश का सिद्धान्त, तो है—स्वतंत्र होना ! क्या, इसके पहिले ही सब कुछ होगा ? अवश्य, तब जापान ज़रूर आयेगा, बम बरसायेगा। रवीन्द्र की कला निगोची के जवाब का उत्तर ! ओह ! अरुण यह नहीं हो सकता, अब भूल न करना।

जापान बर्बर है। हमारी बची खुची सभ्यता भी न रहने देगा। संस्कृति मिटा देगा। कारिया और मंचूरिया, जीते जागते प्रमाण हैं। अरुण, अरुण ! तुम उस दिन जोश में थे, मैं तुम्हें उत्तर……तुमसे मुँहा-मुँही करना, पसन्द न करती थी। अरुण, अब तुम सब समझ गये होगे। जापानी क्या चाहते हैं ?

इस लड़ाई में जनता शक्तिशाली होगी। अन्तिम हाथ उसी का होगा। अरुण ! बलिदान ही शक्ति प्राप्त करते हैं, दबाव और अन्य शक्तियों द्वारा स्वतंत्रता, समाज के साथ विश्वासघात है। लेने वाला ही रक्षा भी करता है। अरुण अब मैं तुम्हें समझा लूँगी।

आरही हूँ, अस्पताल के पास हूँ। अब देखूँगी, तुम कैसे नहीं मानते। तुमसे बहस करूँगी, तुम्हारे साथ रहना है, रहूँगी। तुम्हारा और मेरा ध्येय तो एक ही है, फिर रास्ता अलग अलग कैसे? माँ, बाप, परिवार सभी को···। अब केवल तुम हो और···और···कर्तव्य है।

आगई, देखूँ कहाँ चोट लगी है। अधिक लगी होती तो न न, अधिक न लगी होगी। बड़े होशियार हैं। आह! अरुण तुम्हारा मुँह झुलस गया है। स्वरूप ही बदल गया, हाथ में चोट है! डाक्टर साहब! यह बोलते क्यों नहीं? आप तो कह रहे थे कि प्रभा को बुलाते हैं। प्रभा आगई, ऐं ऐं—क्या—अभी—अभी बेहोशी आई है। क्या कह रहे थे। हूँ-हूँ, अब मैं सब समझ गया प्रभा ठीक कहती थी। डाक्टर साहब! बोलो-कितनी देर में अच्छे होंगे! कोई डेन्जर तो नहीं है? अच्छा, अच्छा—हाँ हाँ मुझे देखते ही ठीक हो जायेंगे? इन्जेक्शन दे रहे हैं आप? दीजिये इन्जेक्शन।

मेरे अरुण! आह······लो······अपनी प्रभा को। अरुण······ अब मुझे लोक लाज की परवाह नहीं, सब छोड़ चुकी हूँ। तुम हो और क्षितिज के सदृश दूर होता हुआ, कर्तव्य से लक्ष्य है। पर अब राह में कोई रोड़े नहीं डाल सकता। अरुण! कैसा जी है! चुप, फिर वही, चुप—देखो डाक्टर साहब आ रहे हैं। यह तो मैं जानती थी कि मेरा रास्ता सही है, तुम्हें आना ही पड़ेगा। बोलो!······रुको, इतनी जल्द बाज़ी नहीं की जाती······चुप,

पहले अच्छे हो लो—बोलो, कौन पराजित हुआ? मैं, तुम, तुम, नहीं मैं, बताते क्यों नहीं? कौन हुआ ओ हो, हो हो……टेलीफोन, हाँ हाँ ठीक है, टेलीफोन।

२३ जून, सन १९४२

मोटे-देवता

पेट तो भर गया, पर—जी अभी नहीं भरा, और मिले तो और खाऊँ। नमकीन है, लज़्ज़तदार है, हड्डी पसली का तो नाम ही नहीं है। इस तरह का तो कभी खाया ही नहीं था। किस जानवर का है? गिद्धनी ने कहा—

अरी यह जानवर का नहीं, आदमी का है। कभी तेरे बाप दादे ने भी ऐसा माँस न खाया होगा ? बोल ग़लत तो नहीं कहता ? अच्छा है न ? अब तो रोज़ यही लाया करूँगा। इस साल तो आदमी ढोरों की तरह मर रहे हैं। तूने अनेकों बार देखा होगा कि आदमी के मरने पर जला देते हैं या फिर ज़मीन में गाड़ देते हैं। खुशी की बात है कि इतने अधिक आदमी मर रहे हैं कि उन्हें जलाने और दफ़नाने वाले ही नहीं हैं।

जानवरों का माँस खाते-खाते जी ऊब गया था और रोज़-रोज़ वह भी ढूँढ़ना पड़ता था। अब तो कहीं ढूँढ़ने की भी ज़रूरत नहीं है। वह जगह मैंने देख ली है, जहाँ मुर्दों के ढेर, जीवित मुर्दों के ढ़ेर, ज़िन्दगी से टक्कर लिया करते हैं। देख, भाग्य कितना बलवान है। कभी-कभी तो फ़ाका ही करके रह जाना पड़ता था। जानवरों का भी नहीं मिलता था। कहाँ ? मनुष्य का ही इफ़राती हो रहा है ! झूट नहीं कहता, यह साले सियार भी सूँघ सूँघ कर चले जाते हैं।

गिद्ध की बातें सुनते-सुनते गिद्धनी के मुँह में पानी भर आया। बोली—मैं भी कल से तुम्हारे साथ चला करूँगी। फिर जाने किस जन्म में इस तरह की फ़सल मिले। एक बार मैं भी अपनी आत्मा तृप्त कर लूँ।

गिद्ध बोला—चल तो सकती है, लेकिन अभी तू चलने के लायक कहाँ है, ।अपना पेट सँभालेगी या मेरे साथ इधर-उधर नचती फिरेगी।

आज तो मेरी जान पर आ बनी थी। तेरी कसम, जरा सी भूल में न जाने क्या हो जाता। हो सकता है कि मैं तुझे और तू मुझे न देख पाती।

गिद्धनी---यह क्या कह रहे हैं आप, बतलाए न ? क्या हो गया था ? जितनी ही देर होती जाती थी, मेरे प्राण सूखते जाते थे। आने का समय टल गया था, मैं बार-बार गरुड़ भगवान से तुम्हारे लिए प्रार्थना करती रही, दुआ माँगती रही। बताओ, जल्द बताओ, मेरे जी में धुकधुकी हो रही है।

गिद्ध---अच्छा, तो तू न मानेगी, मुझे सुनाना ही पड़ेगा ? तो सुन ! मैं कई दिन से सुन रहा था कि 'काक्स बाजार' एक बस्ती है जहाँ मुर्दों की खेती होती है, चारों तरफ़ मुर्दों की हरी-भरी फ़सल खड़ी है। मनुष्य मुर्दों की खेती करता है। जरद्गव वहीं से मोटा होकर आया था। मेरा जी न माना चला दिया। पीठ के ऊपर आसमान था, मैं हवा में झोंके खाता, कभी नीचे, कभी ऊपर आता जाता, चारों तरफ़ ज़मीन पर फैली हुई मुर्दनी देख रहा था। हड्डियों के ढेर, लाशों के अम्बार और उन पर मक्खियों की अपार भीड़ का धावा, कुत्ते और सियारों का छक छक कर जमुहाई लेना। ओह ! ख़ून ही ख़ून, लोमड़ी के बच्चे तक किलोल कर रहे थे। बार-बार मेरी लार टपक रही थी।

गिद्धनी ने कहा---अच्छा, फिर क्या हुआ ?

गिद्ध बोला—मैं धीरे-धीरे नज़दीक पहुँचा। एक लाश जो बिलकुल अलग, पेड़ के नीचे, अछूती पड़ी थी, मेरी आँखों में आगई। फिर क्या था, मैं उड़ा ज़रूर, मगर एक ही झपाटे में बड़ा भारी माँस का टुकड़ा निकाल लाया। चोंच जैसे आग में जल गई। बदबू प्राण लेने लगी। जी मिचलाने लगा। मैं बड़ी मुसीबत में पड़ गया। पेड़ पर बैठकर पत्तों में बड़ी देर तक चोंच रगड़ी, तब जाकर कहीं मुँह का ज़ायका ठीक हुआ।

ध्यान पूर्वक आँखें गड़ा कर देखा तो मुर्दे के शरीर पर बड़े-बड़े फोड़े उभर आये थे। बाज़-बाज़ तो फूट भी गये थे, जिनसे मवाद निकल रहा था। गालों पर आदमी के दाँतों के दाग़ बने थे। कुचों में मरोड़ थी और थी मसलन। रक्त स्वेद के चिन्ह दिखाई दे रहे थे। पास ही किसी फौजी की रूमाल पड़ी थी। पेट, पीठ और नितंबों में बड़े-बड़े घाव थे। शायद इसीलिये, सियारों, कुत्तों और लोमड़ियों ने इसे छोड़ दिया हो, या फिर······। मैं तो इसे एकान्त में अछूती देख कर ही मन मन खुश हुआ था। पर वह अछूती न थी। ज़िन्दा आदमियों ने ही उसकी ताज़गी छीन ली थी। मैं धोखे में पड़ गया था।

गिद्धनी गिद्ध की सारी बातें जैसे स्वप्न में सुन रही हो। चौंक कर बोली—तो फिर आप वहाँ क्यों गये थे? पहले समझ बूझ लेना था। भगवान······। फिर यह मेरे लिए कहाँ से लाये थे?

गिद्ध—जल्दी न कर, अभी कहानी बहुत है। मैं बार बार यही सोच रहा था कि जरद्गव यही सड़ा माँस खाकर मोटा हुआ है। क्या इस सड़े माँस में इतना विटामिन होता है कि जरद्गव थोड़े ही दिनों में चौगुना हो गया। मैं अपने और तेरे भाग्य को कोसता, जरद्गव के ऊपर जलता भुनता लौट रहा था। भूख के मारे आँतें तड़क रही थीं। न जाने कहाँ की भूख मेरे अन्दर घुस गई थी, ऐसा जान पड़ता था कि मैं बहुत दिनों का भूखा हूँ। मन कहता था कि समय बेकार गया, पंख उड़ने में पीछे हट रहे थे। सच मान, अजीब हालत थी। कुत्ते, सियार, कौवे, मक्खियाँ मज़ा उड़ा रहे थे, मल्हार गा रहे थे। मैं जटायू का वंशज, उदास मन मारे तेरी याद करता घर लौट रहा था।

कुछ ही दूर, आगे देखा कि हज़ारों आदमियों की भीड़, गाजा-बाजा और धूम धाम से जाती हुई फूलों से सजी अर्थी, मोटी, मांसल, चार आदमियों के कन्धों पर मचक रही थी। भूख फिर से हरी हो उठी। पहले की तस्वीर गुम हो गई। पंखों में जान फिर से आई, मन ने कहा—इससे बढ़िया ताज़ा अब न मिलेगा। देखें कहाँ फेंका जाता है। मैं अर्थी के ऊपर ऊपर चलने लगा। चन्दन की चिता लगी हुई थी, जी बोझिल हो गया। इसे तो फूँकने जा रहे हैं। बड़ा क्रोध आया, सारे मनसूबे पानी हो गये, लेकिन मन, जीभ और भूख का साथ था पंखों ने भी जोर लगाया, गर्दन नीचे को झुकी, आँखों ने निशाना साधा। मैं अर्थी

ऊपर टूट पड़ा । गोली की आवाज़---बस, मुझे और कुछ नहीं याद । हाँ, जब होश आया तब मैं बरगद के पेड़ पर था । आँखों में तू थी और तेरा अंडों से भरा हुआ पेट । मेरे मुँह से एक आह निकली, भूख जोर की थी ।

गिद्धनी की आँखों में आँसू भर आये । भयानक आशंकाओं से सहमी हुई बोली---इतनी भीड़, इतनी सज-धज ! शायद मनुष्यों का देवता होगा । भगवान गरुड़, मेरा सुहाग······ मेरा सुहाग······ ओह······!

हाँ, बच तो गया रानी, पर अभी कहानी नहीं पूरी हुई । मैंने सोचा अब कहीं राह में न रुकूंगा । बस अब सीधे तेरे पास जाऊँगा, मगर भूख कहती थी कि नहीं, नहीं । बिन पेट भरे, भूखे ही ? इतने में ही एक सरसराती हुई कार आँखों से निकल गई । कुछ दूर पर, एक ऊँचे महल के नीचे रुकी । मनुष्यों का देवता, मोटा---दुमनिये बोरे की तरह, पगड़ी बाँधे, झलर मलर, करता कार से नीचे उतरा । नाक में रूमाल दबाए, छिः छिः करता, लिफ्ट में बैठ ऊपर चला गया, न जाने कहां लोप हो गया । जीभ ललचा कर रह गई । मांस अच्छा था, सेब जैसा सुर्ख़, पर नसीब न था ।

ज़मीन पर पड़े, नंगे, मूक, बेज़ुबान हाथ फैलाये, कुछ माँगते रहे । देवता ने किसी को भी वरदान न दिया । चला गया, कार खड़ी रही । मैंने सोचा, चलो इन्हीं पर धावा बोलें, कि चार पांच हट्टे कट्टे देव-

ताओं के दूत नीचे आये और ज़मीन पर पड़े हुये मनुष्यों को उठा कर कार में डाल दिया। कार चल दी, मैं भी कार के साथ था, भूख सीमा पार कर चुकी थी।

गाँव से दूर, मरघट से दूर, वियाबान जंगल में कार रुकी। दूतों ने मनुष्यों को कार से निकाल-निकालकर फेंक दिया। वे चीख़ते, गुर्राते और चुप हो जाते। मैं खुश हो रहा था। कार चली गई। हाँ, मैंने दूतों के मुँह से सुना, वे कह रहे थे—अन्न और चांदी जमा करें सेठ जी, हम लोग मुर्दे बटोरें, जिंदा-मुर्दे।

अब की फसल अच्छी थी। किसान अच्छा था, भूख न रोक सका। हवाई जहाज की तरह एक पर टूट पड़ा। चोंच मारी, वह तिलमिलाया, हाथ-पैर हिलाए, मेरी जान सूख गई। मैं छिटक कर दूर जा गिरा। चोंच पर लगा, पुट्ठे पर का ख़ून स्वादिष्ट था। फिर दौड़ा वह अन्तिम सांसें ले रहा था। अब की मैंने ऐसी चोंच मारी कि चोंच मांस पार कर गई। हड्डी में अटक गई। मैं ख़ून पीता रहा। उसके मुँह से निकला—भगवान······भगवान तुम तो पहले ही मर गये। उसकी बची खुची सांसें भी निकल गईं। मेरे कानों में ठनाका हुआ, तेरी याद आई। यह उसी की छाती की धरोहर है, जिसे तू अभी-अभी निगल चुकी है। जो नमकीन थी, लज्ज़तदार थी। जय हो मनुष्यों के देवता, तुम्हारी जय हो। तुम्हारा मांस तो देवताओं का मांस है, कब मिलेगा।

२७ अगस्त, १९४४

तीन नेता

अब तो कुछ न कुछ होगा ही ? होगा क्या पत्थर ? तब क्या ? यह उछल-कूद सब बेकार साबित होगी। और नहीं तो क्या ? लार्ड वारेन हेस्टिंग्ज़ के शव की रक्षा होगी इसके सिवा और कुछ नहीं। गान्धी, जवाहर और मौलाना आजाद चुप रहेंगे ? चुप नहीं, स्वागत

करेंगे। पराजित मनोवृत्ति, इसके सिवा और कर ही क्या सकती है। स्वागत, समझौता, यही उसकी अन्तिम राह है।

ब्रिटिश कैबिनेट, कूपलैण्ड का पुलिन्दा ही लेकर तो आ रहा है। इसी पुलिन्दे ने तो सीरिया की नसों का रक्त, 'क्लाइव जैसे बुद्धि वेत्ताओं की लुंठित काया को जीवित रखने के लिये' इन्जेक्शन में दिया है। तुम समझते हो कि मिशन तुम्हें कुछ न कुछ बक्स जायेगा। तुम्हारी आज़ादी के लिये इच्छुक है। तुम्हारा दोस्त है। दो सौ बरसों की दोस्ती निबाहने आ रहा है।

भूल, दुश्मन से फरियाद, कायरता। समूचे देश की जागृति का विनाश, प्रतिक्रियावाद। याद करो जब जब देश उठा, इन्होंने दमन किया। बलिदानों के साथ खेल किया। गोलियाँ चला कर दोस्ती की। अधिकारों को सुरक्षित रखने के लिये अधिकार दिये। उभरती हुई शक्तियों को पस्त करने के लिये, समझौता किया, धोखा दिया। क्या नहीं किया इन्होंने। आज़ादी और समझौता, गुलामी और भीख और यह दबाव की धमकी, देश को धोखा नहीं तो और क्या है।

क्या ? देश तैयार नहीं है, इन्क़लाब हो नहीं सकता। गान्धी, जवाहर और आज़ाद ने अच्छी तरह देख लिया है। इसके सिवा अब और कोई रास्ता ही नहीं है। गान्धी जी की अहिन्सा में लोग हिंसा कर देते हैं। बिना रक्त की आज़ादी इससे सुगम और नहीं। एटम बम, टैंक, जहाज़, गन मशीन और मृत्यु किरण के वैज्ञानिक युग में

हिंसा कभी विजयी नहीं हो सकती है। अहिंसा ही युग का सम्बल है। हृदय परिवर्तन ही अमन और शान्ति का विधायक है।

तब तो कर लिये देश आज़ाद। साठ बरस तो गुजर गये १२० बरस और जुटो, फिर समझौता करो, बलिदान करो, दबाव डालो, और चलने दो आज़ादी का झगड़ा। दुश्मनों का हृदय बदलते रहो। अख़बारों में बड़ी-बड़ी तस्वीरें और बड़े बड़े वक्तव्य छपाते रहो। यह भी आजादी है। अब क्या कमी हैं। अहिंसा हिंसा का प्रश्न उठाकर स्वतन्त्रता के यात्रियों का गला घोट दो।

कायर, पोच, गुलाम कौम को यथार्थ से घसीट कर आदर्श के सपनों में झूलने दो। शहीदों के नाम पर हंगामा उठाओ। उनकी कब्रों पर दो-चार आँसू चढ़ा दो। लोग कहें कि अमुक नेता, फला शहीद की यादगार देखकर रो पड़े। जेल में बन्द लोगों के परिवारों की मदद के लिये अपील निकालो। बड़े-बड़े मुनाफ़ाखोरों और चोर बाजारी करने वाले धनियों को देश भक्ति का सेहरा पहिना दो, चन्दा लो। रेस्टोरेन्ट और होटलों के बिल चुकाने दो और गला घुटने दो। किसान का, गरीब का, मजदूर का, मज़लूम का।

उसके पास बड़ी-बड़ी रकमें नहीं हैं। लच्छेदार बातें नहीं हैं। बग्घी और कारें नहीं हैं। आज़ादी लेने की ताक़त है। जिसका हृदय परिवर्तन नहीं हो सकता। वह आज़ादी के लिये समझौता नहीं करता। लोहे से लड़ता है, धरती चीरता है। बैल की तरह, जिस्म की

ताकत बेचता है, इन्हीं समझौता के पक्षपातियों को। वह मौत से नहीं डरता, बल्कि मौत को मारने की शक्ति बेच देता है। इन्हीं दमन-अमन और देशभक्ति के खरीददारों को।

वहीं हैं, क्लाइव और वारेन हिस्टिंग्ज़ के दूत, हिन्दुस्तान की कोख के कंकड़, पत्थर! जो अपने हितों के लिये, मन्दिर, मस्जिद की आड़ में मज़लूमों, मज़दूरों और किसानों का नेतृत्व ग्रहण करते हैं। गुलामी की धरोहर को सदियों तक ब्याज़ बढ़ाने के लिये, लेखक, सम्पादक, कवि और कला को चांदी के टुकड़ों का दास बनाकर, स्वागत करते हैं, क्रिप्स का, पैथिक लारेन्स और अलेक्जेण्डर का।

देश के नेता, गान्धी नहीं, जवाहर नहीं, जिन्ना और लियाकत नहीं। कांग्रेस और लीग नहीं, बल्कि नेता हैं बिरला, टाटा, स्पहानी और डालमियां को अपने जीवन के लिये जीवित रखने वाले, लड़-खड़ाते हुये ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तिम पाहरू, क्रिप्स, पैथिक लारेन्स और अलेक्जेन्डर।

२७ मई, १९४६

अन्न दान

तुम्हें अन्न चाहिये। आगे चलो। यह राशन की दूकान है, सरकारी है······। फिर अन्न चाहिये। कह तो दिया कि यह धर्मादा नहीं है। यहाँ पैसे पड़ते हैं। चलो यहाँ से, एक को देखकर अभी सैकड़ों इकट्ठे हो जायँगे। नहीं सुनती। बीच राह में खड़ी है।

बाबा अन्न चाहिये ! कहीं नहीं मिला, कोई नहीं देता। ईश्वर हो बाबा ! मेरा आदमी, मेरा·····मेरा······। मेरा-मेरा क्या कर रही है। कहाँ है तेरा आदमी, क्यों नहीं खरीद कर खिलाता तुझे ! जा यहाँ से, आने दे खरीदने वालों को। राह मत रोक।

राह नहीं रोक रही हूँ बाबा ! मैं भी एक भले घर की लड़की···। घर में किसानी होती थी। सब कुछ था, बैल थे, बाग था, सब कुछ था, पर, पर अब कुछ नहीं, सब बिक गया। मेरा बच्चा, गोदी का धन, पेट की सौगांद, हृदय का टुकड़ा····· नाना, बाबा, कुछ नहीं, मुझे भूख है ! अन्न चाहिये। कुछ भी देदो। बड़ी भूख है।

बड़ी भूख है तो मैं क्या करूँ। सुबह से शाम तक तो भूखों का का ही जमघट रहता है। किसको-किसको दूँ। चल यहाँ से। दिलदार, हाँ मालिक, सुनो तो इधर, (कान लगाकर) कैसी है ? अभी नई है मालिक। बीस से अधिक न होगी। आज ही कल में बनारस आई है। जै हो बाबा ! विश्वनाथ की ! बड़े अच्छे-अच्छे माल भेजते रहते हो। दो ही दिन में मस्त हो जायगी मालिक ! जहाँ दोनों जून खाने को मिला, फूलकर चकठिया हो जायगी मालिक ! अच्छा कोई बुरा सौदा तो नहीं है। नहीं मालिक।

अच्छा जाओ, बात करके देखो। मगर सुनो ताऊ जी को पता न लगे नहीं तो सब गुड़ गोबर हो जायगा।

सुबरन देखो दूकान खुलने का समय हो गया। इन सबसे कह दो

कि लाइन से खड़े हों। इस तरह किसी को नहीं मिलेगा। चबूतरे पर मत किसी को चढ़ने देना। कपूर! तुम्हारी पहलवानी इसी समय के लिये है। सुबरन समझ गये तुम कि नहीं, दो बोरे बादशाह और दो देहरादून, बाकी यही आठ रुपये वाला, कुछ आदमी रख लिये है कि नहीं।

रख लिये हैं मालिक! उन्हें लाइन तोड़ने और आगे घुसने के लिए। हाँ, हाँ, सब समझा दिया है। वे लोग सब जानते हैं। लेकिन वे कहते हैं कि इतने से काम नहीं चलता। कभी-कभी, धोखे-धड़ी में, पुलिस के भी डन्डे पड़ जाते हैं।

तो साले क्या मुफ्त में ही चाहते हैं। तीन चार रुपया कमाना, कभी- कभी तो इससे भी अधिक हो जाते हैं। हाँ मालिक! हो तो जाते हैं। अगर इतने न मिलते होते तो यह सन्ड-मुसन्ड तकलीफ़ ही क्यों करते। मालिक इनमें कुछ अपने घरेलू आदमी भी हैं। अच्छी बात है। देखो आज भीड़ अधिक है। दस, पाँच के बाद ही गड़बड़ शुरू कर देना। हटाओ इन सालों को जो ऊपर चढ़े आ रहे हैं। चलो उधर, सब लाइन में नहीं रह जाओगे। साले जायँगे कहाँ। यहीं सालों को लेना पड़ेगा। सुबरन आँख बचाकर कहीं कोई भेदिया न हो जो लेने के देने पड़ जायँ।

अरे···बाबा दया करो, दो मुट्ठी दे दो। तुम्हारा भला होगा। मेरा पेट······कुछ समय के लिये सहारा मिल जाय। माता तू कहाँ से

आ गई । कंगालिन, हम लूले, लँगड़े और अन्धों की भाँजी मारने । अरे देख तो रे, परी है । इसके आगे हम लोगों को कौन देगा । चलो सब लोग घुसो, इसे पीछे ढकेल दो । बाबू देख न पावे । अरी यहाँ सब को नहीं दिया जाता । जो पुराने, बँधे हैं उन्हीं को दिया जाता हैं । जा आगे वाले में मिल जायगा । मुझे पीछे मत ढकेलो बाबा ! भूख लगी है । दे दो मुट्ठी ।

बहुत भूख है । बहुत भूख है तो चल उधर दिलवा दें । यह क्या बाबा ? यह न हो सकेगा, पाप ? बाबा । मेरी भूख से खिलवाड़ न कर । सब कुछ चला गया । मैं भी चली जाऊँगी । मगर इज्ज़त''''''

इज्ज़त । रहने दे परेशान न कर बाबा ।

देख, देख इधर, बगल से कुचों को दबाता हुआ आज तो दिल-वाये देता हूँ । मगर फिर कभी इधर न दिखाई देना । चल जल्द चल । क्या सोचती है । भूख नहीं है तो मुझे क्यों परेशान करती है ।

नारी दबी, सहमी, भूख और इज्ज़त के दानव से लड़ती, क्षुब्ध आँखें ऊपर को उठाकर क्रूर, बेशर्म ।

मैं क्रूर, बेशर्म, जा मर जाकर, बेवकूफ़ औरत, सेठ जी के धर्मादे चल रहे थे । रोज मिल जाया करेगा वहाँ । इधर उधर भटकना न पड़ेगा । बोल चलेगी कि नहीं, अरे भाई तुझसे अब कोई कुछ न कहेगा । चल तो । शर्म, और बेशर्म कहने से भूख न मिटेगी । चल, चली चल, देर हो रही है । कोई जबरदस्ती नहीं छीन लेगा, चल ।

चलती हूँ। आह, भगवान, इज़्ज़त और भूख, भूख के आगे कुछ नहीं, खेत नहीं, बाग़ नहीं, बैल नहीं, आदमी नहीं, बच्चा नहीं, धन और दौलत तो सब भगवान ! भगवान तुम अभी तक हो। सब मर गये, सब कुछ मिट गया, मेरे मरने के पहले ही तुम भी मर जाओ। भगवान है सेठ जी पैसे वाले, गरीबों का गला घोटकर धर्म करने वाले। उनका धर्मादा रोज़ मिलेगा। अन्न ही तो भगवान है।

सुन, अभी यहीं खड़ी रहना। जब मैं बांटने लगूँ, तुम उधर से उस तरफ़ आ जाना। समझी मैं जाता हूँ। मगर देख, ग़ायब न हो जाना।

अच्छा आ गये तुम। हाँ, हाँ मैं उसे ले आया देखो, उधर वह खड़ी है। हाँ, रूपवाली है। रखने का प्रबन्ध करना पड़ेगा। हाँ, मालिक, अच्छे घर की जान पड़ती है। कई दिन से कुछ नहीं खाया। बेचारी भूखी है।

अरे तू दयावान बन गया, रास्ते में ही यह ज्ञान तुझे पैदा हो गया कुछ गड़बड़ तो नहीं की। ना मालिक ना, जिस पर मालिक की निगाह हो, उसे कहीं ग़ुलाम आँख उठाकर देख सकता है। जी तो चाहता था मालिक। लेकिन⋯⋯

लेकिन वेकिन नहीं, अब जा अपना काम कर जाके। थोड़ा देकर सालों को मार भगाना। हाँ उसे अभी न देना। नहीं चिड़िया उड़ जायगी। साले, सब मेहनत बेकार जायगी। जा जल्दी जा।

क्यों शोर क्यों मचा रहे हो ? तुम जानते नहीं हो, यहाँ दो सौ से अधिक को नहीं मिलेगा। यहाँ हज़ारों के इकट्ठा होने की ज़रूरत नहीं है। ठीक यही तो मैं चाहता था। यह बात ठीक कही। मैंने कि दो सौ को ही मिलेगा। अब हर एक दो सौ में आना चाहेगा। अभी बाजी मारता हूँ। फिर तो······क्यों बे लड़ते क्यों हो। मारकूट, छीन, झपट, दूर, दूर, गोदाम हमारी लूटना चाहते हो।

इन्हीं लोगों के लिये सेठ जी ने धर्मादा खोला है। मगर यह लोग उससे फ़ायदा उठाना नहीं जानते। ईश्वर माने है, दस मिलें हैं। बहुत सी दूकानें हैं। बड़े दयावान आदमी हैं। चलो, हटो, सब दूर हो जाओ। अब फिर चार बजे मिलेगा।

ओह, अब न मिलेगा। बिलकुल धोखा। क्या सोच रही है, नहीं मिला अभी तुझे। अब चार बजे आना। भूख है बाबा। तुमने ही तो कहा था कि उधर खड़ी रहना मुझे भूख है। भूख है तो चल, ठिठकती क्यों है ? ऊपर क्या देखती है। साइनबोर्ड है। हिन्दी में है, बंगाली में नहीं। जानती नहीं, इसमें क्या लिखा है। देख, इसमें लिखा है। अन्न दान।

अन्न दान ? यहाँ अन्न दान होता है। अब मौत कुछ न कर सकेगी। दिन बदलेंगे। मगर मेरा आदमी, मेरा बच्चा, अब तो कोई न मिलेगा। फिर······फिर······कुछ नहीं।

यह हमारे मालिक हैं। बड़े भले आदमी हैं। अब तुम्हें कोई

कमी न रहेगी। हाँ, हाँ, आओ अब तुम्हें कोई कमी न रहेगी। यहाँ अन्न दान होता है। अन्न दान ! डरो नहीं, झिझको नहीं। शर्म की कोई बात नहीं है। इन्हीं सीढ़ियों से ऊपर आ जाओ। रोज़ ले जाया करना। दिलदार तुम बाहर जाकर देखो, कुछ भिखारी तो नहीं खड़े हैं जो साले एक तोहमत उठायें कि हमको नहीं मिला, इसको, औरत को दे रहे हैं। चलो आओ मेरे पीछे।

क्या अब तुम्हारे घर पर कोई नहीं है। ना बाबा कोई नहीं। नारी रुकी, क्यों रुकती क्यों हो ? कन्धे पर हाथ रखकर बगल से कुच मरोड़ता हुआ तुम सुन्दरी हो, अब तुम्हें भूख की चिन्ता न रहेगी। क्यों छुड़ा क्यों रही हो ?

छोड़ दे बाबा, हाय मरी, मरी, ओह, मरी, छोड़ बाबा, आदमी कोई आदमी, भूख, नहीं, कुछ नहीं, अब मुझे कुछ न चाहिये। अब केवल मौत, हाँ केवल मौत। हाय मरी, साइनबोर्ड हिन्दी में है। बंगाली में नहीं। जानती नहीं इसमें क्या लिखा है, इसमें लिखा है अन्न दान।

वारन्ट

तुमने लिखा है कि तुम्हारी अनुपस्थिति के कारण तारीख़ बढ़ा दी गई है। ज़मानत भी जब्त हो गई है। शायद वारन्ट भी निकल गया है।

अच्छा ही हुआ। झूठ की चिन्ता, झूठा मामला, झूठी पुलिस,

घूसखोर निकम्मे अफ़सर और चाँदी के टुकड़ों पर बिकने वाला न्याय ! अच्छा ही हुआ मेरी अनुपस्थिति के कारण वारन्ट निकल गया। अन्धों की नगरी में, आँखों की भीख माँगना, गूँगे से स्वाद पूछने के समान है। किस की परवाह, कैसा अफ़सोस, एक बार क्या दस बार, जेल, नरक कुण्ड।

जहाँ क़ातिल को सज़ा नहीं। करोड़ों आदमियों, बेज़ुबान औरतों और निरीह बच्चों के प्राण लेने वाले राजा, नवाब, स्पहानी, नून और बिरला को प्राणदण्ड नहीं। एक एक चिट कपड़े के लिए, समाज की व्यवस्थापिका नारी को नंगी रख कर, उसकी अस्मत पर डाका डालने वालों को सर की उपाधि। वहाँ जीवन के सत्य के लिए, स्थान नहीं, जगह नहीं।

तिरङ्गा झन्डा सारे बदन में लपेट कर, खरीद लें पद्मपति, साठ बरस की राष्ट्र की कमाई को। दमन और अमन को। जवाहरलाल को दावत देकर अपनी अपनी बचत कर लें, राजे महाराजे और साहूकार। देश भक्ति के पवित्र उद्देश्य को बस में करने के लिए, मोल ले लें, मरभुखे कलाकारों को। पर यह सब कितने दिन ? जवाहर और गन्धी, अब इनकी रक्षा नहीं कर सकते। दानवीर बन कर यह, सर्वहारा को अब नहीं लूट सकते।

एक वारन्ट क्या ? पचासों वारन्ट निकलवायें, कब तक निकलवायेंगे ? लुबलिन जैसे बूचड़ खाने बनायें। कलाकारों के हाथ कत्ल

करवायें। उन्हें मार डालने की धमकियाँ दें। कौन परवाह करता है उनकी धमकियों की ? बुरे को बुरा कहना सत्य नहीं है तो फिर राम, कृष्ण, ईशा, वाल्मीक, व्यास, तुलसी झूठे बिल्कुल झूठे। आग लगा दो इनकी पोथियों को। मिटा दो इनके नाम को, इनकी परम्परा को।

बुज़दिल, कायर, कलाकार, लेखक और कवि तुम अपने अपने को धन्य समझ बैठे हो, सेठों की बगल में मचमचाती हुई कार में बैठ कर, इनके भव्य भवनों में दावत खाकर स्वर्ग का सुख पा चुके हो। बिजली के पंखे के नीचे बैठ कर कलम घिसने वाले सम्पादक अपना घर देखो। चार छः घन्टे की चमकती हुई ज्योत्सना में न भूल जाओ, नहीं तो भूल जाओगे जीवन को और होने वाली जीवन की क्षण प्रति क्षण की क्रान्ति को। देखो अपने बच्चों को सुबह होते ही पैसा माँगते हैं। तुम बहाने बाजी कर, अपना मन मार कर उनको फुसला देते हो। यह तुम्हारी अधोगति नहीं तो और क्या है ? वह तुम्हारे जीवन में पाप नहीं तो और क्या है ? एक बार पूछो अपनी औरत से कि क्या वह तुम्हारी कल्पनाओं से जोड़ खाती है ? तुम सिनेमा की चलती फिरती, असमानता की प्रतीक नारी को देखते हो और देखते हो चाँदी के टुकड़ों पर बिकी हुई उस गर्ल्स स्कूल की कुटनी अध्यापिका को, जो सरमायादार की गोद में बैठ कर पानी हौज में नग्न नृत्य करती है और भविष्य में आदर्श माँ बनने वाली लड़कियों को क्रय विक्रय का मार्ग दिखलाती है। क्या यही तुम्हारी कलम का आदर्श होगा ?

बोलो क्या यह सभ्यता मनु की सभ्यता है ? क्या यह तुम्हारी ही देन नहीं है ? इन पापों का प्रायश्चित तो तुम्हें करना ही होगा। कला के सपनों के बल पर अब इसे न ढक सकोगे। सर्वहारा शक्ति जाग चुकी है। लो अब तुम्हारा भी वारन्ट निकल चुका। निकलो उस घेरे में कब तक यह दूर रहोगे। तृष्णा वह आग है जिसे तुम सैकड़ों जन्म अकेले नहीं बुझा सकते। उसका समाज द्वारा जन्म होता है और उसी समाज द्वारा वह मिटाई भी जा सकती है। यह धूम्राच्छादित आदर्श तुम्हारे और समाज दोनों के ही लिए घातक हैं। वारन्ट निकल चुका है, पुलिस आती होगी। तैयार रहो, संघर्ष के लिए। अकेले नहीं सब के साथ। अब अन्तिम बेला है। परतंत्रता, झूठ, अन्याय, सब के विरुद्ध लड़ना ही इन्साफ है। संस्कृति, कला, सम्पति, सभी कुछ तुम्हें निर्माण करनी है। मौसम बहार का नहीं, बहार की मौसम की तमन्ना है। कचहरी, कोर्ट, किले बदलो, वारन्ट का भय नहीं।

सुरेन्द्र महल, प्रयाग
७ जुलाई, १९४६

देश को सन्देश

आज, जब उठने के दिन आये, तो आगे चलने वाले बैठ गये। सारे प्रतिक्रियावादी, अधिकारों को पाकर आगे चलना भूल गये। इनका आसरा छोड़ दो। तृष्णा छोड़ दो। चलो वीरों की परिपाटी पकड़ो। तुम्हारे लखूखा बलिदानों की मिट्टी, मुर्दों को जीवन देगी,

प्राण देगी ; जो पहिले ही से सुलग रही थी वह चिनगारी अभी नहीं बुझी फिर धधक उठी है । दोस्तो ! सर से कफ़न बाँध लो । जङ्ग की आख़िरी तैयारी है ।

तुम्हें दया के ऊपर छोड़ कर, ये लोग अपना अपना इतिहास बना रहे हैं । तुम्हें मौत के मुँह में छोड़ कर, ये लोग दुश्मन से हाथ मिला रहे हैं । अँगरेजों की नीली नीली पुतलियों में यह काले शरीर वाले भी समा गये हैं । तुम्हारी सारी क्रियाओं को विफल करने के लिये, मतवाले, विषधर पाल रक्खे हैं । तुम, तुम, कुचले, चुसे और पिसे हुए नारी-पुरुष आज हलाहल पीकर नाचो । दोस्तों सर से कफन बाँध लो ? जंग की आख़िरी तैयारी है ।

अपनी आशाओं के महल बनाने वाले, अपनी अपनी मंजिल पर पहुँच गये । छल का जाल बिछाने वाले अपनी अपनी मंजिल पर पहुँच गये । उनकी मंजिल भी तो यहीं तक थी । आगे की मंजिल तुम्हारी है ? तुम्हें तय करनी होगी ? चलो हड्डियों की नाव पर, शोषण की नदी पार करें । प्रलय बरसाने वाले सावन के बादलो गरजो । अब अत्याचारी नहीं रह सकते ? दोस्तो, सर से कफ़न बाँध लो । जंग की आखिरी तैयारी है ।

दिलों के खूनी घाव फिर से हरे हो जाओ ! उच्छ्वासो लपटें बन कर फूट पड़ो । आसमान के तारों डोलो । प्रलय करने वाली बिजलियों टूटो ! सागर, आग उगलो । आदि पुरुष ने अपने नयन खोले हैं ।

ताण्डव हो रहा है। युग के मेहनत कशो ! चलो, बढ़ो। आज अब सङ्गठित शक्ति के बल पर, स्वतंत्र होने की बारी आई है। दोस्तो, सर से कफ़न बाँध लो ! जंग की आखिरी तैयारी है।

सुरेन्द्र भवन, प्रयाग
१६ अगस्त, १९४६

समय की पुकार

युद्ध-स्थली में समय पुकार रहा है। बलि वेदी में भयंकर अग्नि शिखायें उठ रही हैं। अपने अपने अधिकारों के लिए, सभी वर्गों ने संगठित होकर ललकार लगाई है। लो, बम्बई और करांची धधक उठी और कलकत्ता, कलकत्ता तो पहले ही से लपटों में था।

अब जन-जन में विद्रोह बढ़ रहा है। निरंकुश शासन सत्ता दिल में दहल रही है क्योंकि मनुष्य, मृत्यु से जीत कर इन्कलाब की अगुआई कर रहा है। अंगारों, गोलियों और गोलों के ऊपर लाल झण्डा फहरा रहा है।

नौसेना के वीर सिपाही अनुशासन तोड़ कर अपने हितों के लिये, उभर आये हैं। उन्हें दुश्मन की शंका नहीं। खौलते हुये समुद्र के अन्दर उन्हीं बीस ज़हाजों में डंका बजा दिया है। अंगरेजों ने उनके ऊपर गोलियों की बौछार की। मगर उन बागी सिपाहियों ने गोलियों का जवाब तोपों से दिया। आज संगीनों पर चढ़ी हुई दिलेरी अपनी कुर्बानी लिये खड़ी है। आज मनुष्य का स्वाभिमान जुझारू बन गया है। प्राणों ने उसे अतिथि मानकर पूजा की है। अंगारों, गोलियों और गोलों के ऊपर लाल झण्डा फहरा रहा है।

दिल्ली, मद्रास, जबलपुर, और लाहौर, सभी जगह जागरण की लहर आ गई है। सिख, अछूत, हिन्दू और मुसलमान, प्रत्येक के सोये हुये दिल जाग उठे, सुलगने लगे। रेल, मिल, बस और जहाजों पर काम करने वाले मज़दूर उठ कर खड़े हो गये। इसलिये मेहनतकशों, देश के भीतर अब कोई डलहौजी न रहने पाये। शहीदों के खून का ब्याज अब पाई-पाई वसूल कर लो। अंगारों, गोलियों और गोलों के ऊपर लाल झण्डा फहरा रहा है।

हिटलर, तोजो तो पहले ही मिट चुके हैं। अब जलियाँवाले बाग

में गोली चलाने वाले डायर जैसे चर्चिलों को भी मिटा दो। यह इन्शानियत के दुश्मन भागकर न जाने पायें। बिन-बिनकर इन्हें मार डालो। तुम्हें भयंकर अकाल ने चुनौती दी है। तुम उसके लिये तैयार रहो। उसकी चुनौती स्वीकार करो। स्वतन्त्रता तुम्हारे हाथ है, उतरो मैदान में तो उतरो। अब गावों, नगरों और शहरों में इन्कलाब की शहनाई बजने दो। अंगारों, गोलियों और गोलों के ऊपर लाल झन्डा फहरा रहा है।

उस क्रूर, छली क्लाइव की जड़ें उखाड़ फेंको। जो अब तक तुम्हारा घर बार उजाड़ रही है। अब आखिरी जंग छिड़ गई है। अभी तक तो केवल खिलवाड़ हो रही थी। दो सदियों से गुलामी की चक्कियों में पिसने वालो उठो और इन चक्कियों को चूर-चूर कर दो। अब "क्या करें क्या न करें" कहने से काम न चल सकेगा। मूढ़ और गँवार बने रहने से स्वतन्त्रता न मिल सकेगी। चलो सदियों के भरे हुये विष के घड़ों को फोड़ दो। सन् सत्तावन में जो आग दब गई थी अब फिर से धधक उठी है। अँगड़ाई ले रही है। अंगारों, गोलियों और गोलों के ऊपर लाल झन्डा फहरा रहा है।

तुम अभी तक बैलों की तरह अपनी ताक़त बेचते रहे हो। तुम अपने चारों तरफ लगी हुई जोंकों को नहीं छुड़ा पाये। तुम अभी तक एक जून भी बेखटके खुशी के साथ अपना पेट नहीं भर सके। खेतों, खलिहानों, मिलों और खानों में अब तक तुमने अपना सारा का सारा

ख़ून चखा दिया है। यदि अब की चूके तो प्राण न बचेंगे। इसलिए चलो, उठो, और अपने भाग्य का निबटारा करो। आंखें मल लो। भुजायें फड़का लो। स्वतन्त्रता दूर नहीं है। अंगारों, गोलियों और गोलों के ऊपर लाल झन्डा फहरा रहा है।

इधर देखो। नौकरशाही के डाले हुए डोरे कहाँ-कहाँ तक पहुँच गये हैं। मिल मालिकों, जमींदारों और सभी सरमायादारों का जोर बढ़ रहा है। यही तो नौकरशाही के एजेन्ट हैं। चोर बाजार चलाने वालों और घूस तथा डाँड़ लेकर गरीबों को लूटने वालों ने अपना पलड़ा भारी कर लिया है। यह देशभक्ति को चाँदी के टुकड़ों पर खरीद कर बेगुनाहों को कोड़ों से पिटवा रहे हैं। सदियों से पिसनेवालों इन्शानों इनसे चौकस रहो। इनका स्वराज्य तुम्हारे लिये न होगा। तुम्हारे स्वराज्य की राह में यह रोड़े डाल रहे हैं। यह भेड़िये ख़ूनी हैं धै लगे हैं।

अब इनकी भी शामत आ गई है। अंगारों, गोलियों, और गोलों के ऊपर लाल झन्डा फहरा रहा है।

तुम्हें भगतसिंह के फाँसी के तख्ते की कसम है। तुम्हें चन्द्रशेखर आज़ाद जैसे लाखों बलिदानों की क़सम है। तुम जिस माता का दूध पीकर इतने बड़े हुये हो, उसके दूध की क़सम है। तुम्हें अपने बेटों और बेटियों की कसम है। यह जनता का युग है, प्राणदान लाया है। चलो अब अपना-अपना घर निर्माण कर लो। तुम्हें खुदा और राम

की क़सम है। चेतो और चेत कर मनुष्यता का सुनहला सबेरा कर दो। बाहर वालों की ठकुराई मिटाने के लिए, ख़ून का दरिया बहा दो और अपनी स्वतन्त्रता ले लो। अंगारों, गोलियों और गोलों के ऊपर लाल झण्डा फहरा रहा है।

२ मार्च, १६४६
प्रेम नगर, कानपुर

गजीना

एक लखपती की बारात जा रही थी। आगे-आगे मशहूर बैण्ड था। बीन बाजों में बिजली के लट्टू लगे थे। बजाने वाले गोलाकार घूमते क्रमशः बिजलियों को बन्द करते, जलाते, बारात की शोभा बढ़ाने के लिये किराये के मजदूर, झल्ली वाले, पगड़ियाँ, अचकन और पाय-

जामों के टिपटाप में, विद्रूप मुस्कराहट के साथ लाल-पीली-हरी झंडियां लिये, मरहटा और मुग़ल सामन्तवाद की झांकी दिखला रहे थे। इक्के, तांगों के घोड़े और ढोर लादने वाले ऊँट, जिन पर काले-काले कुली, हड्डियाँ ढूँढने वाले मेहतर नगाड़े बजाते अपने को भूले, स्वर्ग का आनन्द पा रहे थे। सुन्दर वस्त्रधारी बाबुओं की टोलियों के बाद कारों का ताँता, पीछे फूलों से सजी एक कार और कार पर युग की असामानता का प्रतीक स्वर्णाभूषणों से लदा बारात का बादशाह !

काशी आसमान से जैसे ज़मीन पर गिर पड़ा। बारात का हल्ला स्वप्न-सा लोप हो गया। रुँधे हुए स्वर से निकला—वहीं मिलेगा ? कल सुबह फलदान भेजना है—कोशिश कर दो नहीं तो कैसे काम चलेगा।

अजी काशी साहब एक थान क्या एक चिट भी नहीं मिल सकती। मलमल कहीं देखने को भी है। सारी दूकानें घूम आइये, मैं झूठ नहीं कहता, मलमल क्या कोई भी कपड़ा नहीं है। मेरी ही दूकान की सी हालत देखने को मिलेगी। बहियाँ, मुनीम, मालिक, पुराना हिसाब किताब और खाली इलमारियाँ इसके सिवा अब कपड़े में और कुछ नहीं है।

काशी—तो यह सब कपड़ा चला कहाँ गया ?

दूकानदार—चला कहां गया ? कन्ट्रोल के मारे कहीं रहने पाता है। सरकार रोज़-रोज़, नये-नये कानून लगाती है। धकड़-पकड़, जुर्माने

के मारे आफ़त है, दो रोटियाँ मिलना भी दूभर हो रहा है। दस-दस नौकर, मुनीम बैठे-बैठे तनख्वाह ले रहे हैं। सारे खर्च कम कर दिये हैं, घर से दूकान तक पैदल आता हूँ, दो सईसों को जवाब दे दिया है। क्या करता ? पैदा करने का ज़रिया तो सरकार खत्म किये दे रही है, अब भगवान ही मालिक है।

काशी ने कहा—तो फिर दूकान क्यों नहीं बन्द कर देते, क्यों मक्खी मारते हो यहाँ बैठे-बैठे ?

दूकानदार ने कहा—दूकान क्यों बन्द कर दें। अभी आशा है कि कन्ट्रोल ख़त्म हो जायगा। नहीं तो लाखों के वारे न्यारे हो जायँगे।

काशी दूकानदार का मतलब समझ गया बोला, तो आपका मतलब है कि कन्ट्रोल न रहना चाहिये ? मनमानी लूट के लिये तुम्हें छोड़ दिया जाय। कपड़ा बनाने वाला एक-एक चिट के लिये तरसे। औसत दर्जे के घरों की औरतें—फटे चीथड़ों में रहें। आदमी लँगोटी लगायें घूमें और आप लोग कन्ट्रोल ख़त्म कराने के लिये, हड़ताल कर दें। चाँदी के महल बनाने के स्वार्थ में जनता की ज़िन्दगी तबाह कर दें। जरा भी न हिचकें। सेठ जी याद रखिये—यह जिम्मेदारी आप लोगों की है। सरकार पर लादने से काम न चलेगा। देश में घुन लगाने वाली नीति छोड़नी पड़ेगी।

क्या है काशी भाई क्या है ? दूकान की तरफ़ आते हुये एक

परिचित दलाल ने कहा।

काशी—बहिन का ब्याह है, कल फलदान भेजना है। गजौना के लिये एक थान चाहिये, नहीं मिल रहा है।

दलाल—दूकानदार की ओर इशारा करते हुए बोला—भाई इन्हें तो एक थान मिलना ही चाहिये। देशभक्त हैं—तुम्हारे यहाँ तो दहेज का भी बहुत बड़ा चक्कर है। काशी की ओर मुखातिब होकर कहा।

काशी बोला—हाँ, दहेज? हमारे यहाँ तो आप जानते ही है। न है और न हम इस प्रथा को चलने ही देना चाहते हैं। किसी तरह बहिन के हाथ पीले करने हैं।

दलाल ने जोर देकर दूकानदार से कहा, भाई इन्हें दो एक थान। इनके जैसे आदमी की तो मदद करनी चाहिये।

मुँह बनाते हुए दूकानदार ने कहा, तुम कैसी बातें करते हो परमेश्वरी? अहमदाबाद के माल पर सील हो गई है। बम्बई का हमारे पास है नहीं, गजाधर बाबू के यहाँ पूछो, देखो शायद इन्हें दे दें। वे भी कांग्रेसी हैं।

दलाल, वह तो दूकान पर हैं नहीं। बिशुन बाबू के यहाँ बम्बई का माल जरूर है, मिल सकता है, मगर २२) थान, वह भी चुपचाप ले लो। जाओ शायद दे दें।

काशी—तब तो हमें मिल चुका, फिक्सप्राइस में तो हमें देंगे नहीं,

घाटा है, और ब्लैक में देने से रहे, तब तो हमें मुर्दों के कफ़न खरीद कर भेजने होंगे और रास्ता ही क्या है ?

परमेश्वरी—अभी इतने हताश क्यों हुये जा रहे हो। वह और तुम साथ-साथ जेल में रहे हो। साथ-साथ काम किया है, वे तुम से चोरी न करेंगे। जाओ मेरी मान लो ! मुझे विश्वास है कि तुम्हें निराश न होना पड़ेगा।

काशी ने सांस लेते हुये कहा, अच्छा जाता हूँ, नमस्ते, नमस्ते !

कपड़े की दूकानों पर नज़र डालता, काशी पाप पुण्य के ठेकेदारों की बुनियादी विशेषता पर विचार करता एक थान गजीना के लिये जा रहा था। देशभक्त हैं, जेल में साथ रहे हैं, गान्धी जी को मानते हैं। अन्य धनी व्यापारियों के बीच में अपने को एक आदर्श देशसेवी व्यापारी समझते हैं। हालांकि इनकी दूकानों में देशभक्ति के नाम पर अधिक गाँठ काटी जाती है। मगर मेरा तो लिहाज़ करेंगे। ज़रूर एक थान गजीना दिला देंगे। धीरे-धीरे काशी बिशुन बाबू की दूकान के समीप पहुँच गया। लेकिन दूकान के अन्दर घुसने को पैर न उठते थे। विचार शून्य, थकान से बोझिल, काशी ने दबी आवाज़ में रुक कर बन्दे किया।

बन्दे, आइये काशी प्रसाद जी आज कैसे भूल पड़े। लाना वह खाता, बम्बई की हुन्डी भेज दी, मुनी-उनी कि अभी नहीं ? हलो, हलो, आप कहाँ से बोल रहे हैं। अच्छा, अच्छा, हूँ, हूँ, अजी नहीं, इतने

में नहीं अच्छा इतने सही, सँभाल कर मँगाना, नहीं, नहीं दोनों के लिये है। इसीलिये तो कहता हूँ कि फौज। लारी वालों से काम निकलेगा। बस वही, १५) २०) से, जै राम जी की। हाँ तो कहिये काशी प्रसाद जी आजकल क्या कार्यक्रम चल रहा है ?

इस समय घरेलू कामों में व्यस्त हूँ। उसी सिलसिले में आपके पास आया हूँ ?

कहिये, क्या आज्ञा है ?

आज्ञा क्या ! गजीना के लिये, एक थान मलमल का चाहिये। कहीं नहीं मिल रहा है। इसलिये आपको कष्ट दे रहा हूँ।

मेरे यहाँ, देखिये कहीं कुछ है भी। क्या करूँ लाचार हूँ, नहीं तो आपके लिये।

कुछ भी करिये, मेरे पास अब कोई दूसरा चारा नहीं है। सारा किया कराया चौपट हो जायगा।

भाई काशीप्रसाद जी मैं मजबूर हूँ, लाचार हूँ, कुछ नहीं कर सकता, नहीं तो आपको इतना कहने की ज़रूरत ही न पड़ती। सरकार कपड़े की भी राशनिंग कर रही है, सारा कपड़े का बाजार नष्ट हुआ जा रहा है।

आप देखते थे कि मेरे पास सैकड़ों व्यापारी आया-जाया करते थे। अब यहाँ कुछ नहीं है। कन्ट्रोल और राशनिंग के द्वारा यहाँ भी सरकार बंगाल बनायेगी। कन्ट्रोल ख़तम करने के लिये आप क्या कर

रहे हैं ?

रहने दीजिये, मैं आपकी सारी बातें समझ गया। देश चाहे भाड़ में जाये, देश सेवा के नाम पर मुनाफ़ा, चोरी, और गरीबों का गला काटने से मतलब! अच्छा यह मुझे बताइये कि मुझे गजीना के लिये कपड़ा मिलेगा या नहीं।

आप बिगड़ क्यों रहे हैं ? कह तो दिया कि नहीं मिलेगा, होता तो क्या मुझे पाल धरना था।

अच्छा, बन्दे, बन्दे, बन्दे कहकर काशी दूकान से बाहर हो गया। रास्ते में फिर कहीं न रुका और न किसी से बात ही की, सीधे घर आया। देश-सेवा के सस्तेपन पर जनता की हत्या, चोर बाजार, संस्कृति और सभ्यता के नाम पर तिजोरियों में दौलत, नर-हत्या, पाप, महापाप। यही विचार काशी के मस्तिष्क में संघर्ष स्वरूप उत्पन्न हो रहे थे।

बड़े भाई को उदास और क्षुब्ध देखकर धीरे से प्रेमनाथ ने पूछा भइया क्या थान नहीं मिला ? काशी ने उत्तर दिया, नहीं।

अब क्या होगा ? प्रेमनाथ ने कहा।

होगा क्या ? थान के बिना फलदान रुक जायगा। बाजपेई जी से सब हालत बता देना—कपड़े की हालत तो वे भी जानते हैं।

प्रेमनाथ—मगर रसम तो नहीं टाली जा सकती।

दहेज का मामला टल गया है, यह भी टल जायगा। काशी ने जोर देकर कहा।

भइया वे साफ़ इन्कार कर देंगे। जो कुछ मुँदी है, खुल जायगी। यही कहेंगे कि इन लोगों से सम्बन्ध मत करो। बाद में यह लोग कोरा अँगूठा दिखायेंगे।

काशी—तुम यहीं सब मन गढ़न्त किये लेते हो, जाओ सब्र से काम लेना।

प्रेमनाथ, नाई और पुरोहित को साथ ले फलदान चढ़ाने चला गया। काशी रात भर करवटें बदलता रहा, एक मिनट को भी आँख न लगी। बारात का दृश्य, कई तरह के बाजे, सुन्दर, बेशकीमती कपड़े पहिने बाराती, फूलों से सजी कार पर बैठा बारात का बादशाह और एक थान गज़ीना के अभाव में निकट भविष्य में होने वाली घटना की आशंका, चारों तरफ़ से थपेड़े लगा रही थी।

काशी जिन परिस्थियों से डर रहा था, वही आकर सामने खड़ी हो गईं। प्रेमनाथ लौट आया, फलदान वापस कर दिया गया। कहा गया कि धोखेबाज़ हैं, बारातियों को खाना तक न मिलेगा, देशभक्ति का बखान करेंगे, बड़े-बड़े लेक्चर झाड़ेंगे। अन्त में कुश कन्या कह कर टाल देंगे।

लीला से कोई बात छिपी नहीं थी। दो भाइयों के बीच एक बहिन थी। बड़े भाई की देशसेवा में घर चौपट हो गया, भविष्य के स्वप्न मिट गये। छः महीने की उम्र में ही माँ मर गई थी। कठिन मुसीबतों के साथ सोलह साल तय किये थे। भाइयों की परेशानी, संकटों की ज़िन्दगी

उसे अधिक विकल करने लगी। । मेरे ही कारण सभी परिस्थियाँ उत्पन्न हुई हैं। मैं न होती तो भइया की राह में क्यों इतनी बाधायें पड़ती। उन्हें ज़रा-ज़रा सी बात में क्यों अपमान के घूँट पीने पड़ते? मैं ही इन सब का कारण हूँ। मेरे ही लिये, यह सब कुछ। ऐसे जीवन से क्या? मैं पैदा होते ही क्यों न मर गई थी, माँ, माँ, भगवान मुझे शरण दो।

प्रेमनाथ से सारी कहानी सुन काशी, प्रारम्भ से लेकर अब तक की घटनाओं का वैज्ञानिक विश्लेषण कर अपने को शान्त बना लेना चाहता था। पर समाज की अवस्था और उनसे पैदा होने वाली दिन प्रति दिन की समस्याओं से क्षुब्ध हो समाज के सड़े-गले बन्धनों को टूक-टूक कर देने की बात उसके हृदय में उठती बैठती। जाति-भेद, धर्म-भेद, लड़कियों की खरीद फ़रोख्त इस सड़ी हुई संस्कृति के कारण ही तो है। जब तक इन संस्कृति पुंगवों का जनाज़ा नहीं निकालेगा, तब तक समाज का न तो कल्याण ही होगा और न सभ्यता का रूप ही सँवर सकेगा। नैतिक गुलामी ही समाज का पतन है। एक थान गजीना न होने की वजह से मेरी बहिन का ब्याह नहीं हुआ। अब अन्तर्जातीय विवाह करूँगा, देखें कौन क्या करता है? किसी को कुछ कहने का कोई हक़ नहीं है, सैकड़ों लड़कियाँ इन्हीं कुप्रथाओं की भेंट हो चुकी हैं। भ्रूण हत्यायें होती रहती हैं। समाज करता है और पापों को छिप छिप कर पीता भी रहता है। ऐं यह आवाज़ कैसी?

देखो तो प्रेम लीला रो क्यों रही है ?

प्रेमनाथ लीला के कमरे में घुसते ही चिल्ला पड़ा, दौड़ो, दौड़ो, भइया !

काशी लपकता हुआ पहुँचा, यह क्या किया तुमने लीला ? मैं तुम्हारी मुरादें न पूरी कर सका, कभी खाना है तो कपड़ा नहीं, कपड़ा है तो अन्न नहीं छः महीने और सोलह साल ! इतना अन्तर ! तुम्हें विष पान करना पड़ा, एक थान गजीना के पीछे, बहिन, बहिन ! लीला, लीला ।

लीला की आँखें फटीं—प्रेमनाथ चीख़ मार कर रो उठा । काशी के आँखों में धूमधाम से जाती हुई बारात, कार पर बैठा हुआ बारात का बादशाह, देशभक्ति की आड़ में, चोर बाजार, मुनाफ़ाखोरी, गरीबों की लाशों पर चाँदी के महल, सभ्यता के धोखे में लूट, एक थान गजीना और विष पान ।

१२ फरवरी, १९४५
कानपुर

श्राम की गुठलियां

बादल श्राये श्रौर बरस कर चले गये, फिर कड़ाके की धूप निकल श्राई। ज़मीन श्रौर श्रासमान की सारी तपिस, तिलोक के शरीर से मूसलाधार बह निकली। पसीना निकलने से शरीर का भारीपन हलका हुश्रा, पर मन श्रौर वजनी होता गया। तिलोक

उकताया, खड़ा हुआ, खेत के चारों ओर देख डाले, लेकिन उत्साह न समेट सका। सर पर टपकती हुई घास का गट्ठा एक हाथ से और दूसरे मे बैल की रस्सी और खुरपी पकड़े घर की तरफ चल दिया।

छै फर्लाङ्ग की दूरी, कोसों जान पड़ रही थी। घास का बोझ इतना न था जितना विचारों का। पिछले चार वर्षों की घटनायें आशंकायें बन कर भविष्य जर्जर करती रहती थी। तिलोक मन से नहीं पर तन से दुर्बल हो रहा था। मेड़ की राह साफ़ थी पर आँखों की राह घिरी हुई थी कुछ क्षण बाद आने वाली मुसीबतों की चिन्ताओं से।

तिलोक सोचता क्या होगा, कहाँ से देंगे, अब तहसीलदार के आने की बारी है। दुश्मन सीधी तरह नहीं रहना देना चाहते। बाल बच्चों को मार डालने पर तुले हैं। मुक्ता तू भाई है, नहीं भाई नहीं, तू दुश्मन है। तेरे ही कहने से तो पाँच बीघे गोजई के आठ बीघे गेहूँ लिखे गये। तू चाहता है कि यह सब मर जायँ मैं सारी जायदाद हथिया लूँ। मगर मैं मरते दम तेरा न्योहार न लूँगा। बाप की रक़म मार कर पैसे वाला बन गया है। अमीरी का रुआब है तो मुझे भी अपनी ग़रीबी पर ग़रूर है। किसी साले हाकिम हुक्काम का पुछल्ला बना तो नहीं घूमता। कुकर्म का पैसा तो नहीं बटोरता। एक जून पेट भर लूँगा किसी की चोरी न करूँगा। तुझे बड़ा घमंड है दौलत का, जो जी में आये कर लेना कुछ उठा न रखना।

पटवारी को दामाद की तरह घर में जिवाँ कर यह साजिस करवाई है, कह दूँगा कि जाँच करवा ली जाय। मगर जाँच, जाँच से क्या होगा, यही पटवारी के बाप होंगे तहसीलदार जाँच करने वाले। छहेल के मारे आधे खेत में कुछ हुआ ही नहीं, आधे में जो कुछ हुआ भी उससे बीज बल्ल नहीं पूरा हुआ। पच्च बिगहा में गेहूँ जौ का नाम नहीं, चना भी हो गया, नहीं तो सब मर जाते। अब धरा है महादेव का ठेंगा ले जाँय तहसीलदार। मारेंगे साले को, जो भी आयेगा रोटी छीनने के लिये। सरकार कुछ तो सुनेगी। काँग्रेस को दरख्वास्त देंगे। जब कर नहीं तो फिर डरें किस लिए। अगर गल्ला होता और न देता तब तो ज़ुर्म था और जब है ही नहीं तब कैसा ज़ुर्म। अगर कोई कहे कि बैल बेच कर गल्ला अदा करो तो यह जीते जी नहीं हो सकता।

बैल हरे हरे ज्वार के पत्तों को देख कर ललचाता, जीभ निकाल, लपक कर पौधों को पकड़ने की कोशिश करता और कभी कभी उड़ा भी देता। बैल के झिटके से तिलोक के बिचार टूट जाते, बुदबुदाता हुआ बैल से कहता, चलो सीधे राह पर चले चलो, पराये खेत में मुँह नहीं डाला जाता। अब जान पड़ता है कि तुम भी साथ छोड़ोगे। मन ही मन इस प्रश्न का उत्तर भी ले लेता और कहता, अच्छा छोड़ देना।

अहीरों वाली गली हर साल बरसात में लिवारे से भर जाती है।

आदमी क्या पशुओं तक को इस गली में आकर नरक पार करना पड़ता है। बरसात के दिनों में इस गली से औरतें और बच्चे आने जाने में डरा करते हैं। तिलोक बैल लिये था बीच गली के कीचड़ से जाना पड़ा। आधी दूर पर पैर सँदने में उलझ गये। बैल आगे को तुड़ाता और तिलोक सँदने से अपने पैर निकालने की चेष्टा करता। अभी आगे गली पार करनी थी। सहसा किसी की आवाज़ सुनाई दी।

इधर से न निकला करो बेटा! यह गली क्या है मौत का घर है। आग लगे इस गली में। बेटा अबहीं मितलुआ कहत हतो कि तहसीलदार आये हैं बरैई तहसीलदार। तुम्हार भयवा तुम्हार दुश्मन है। जाओ समथा कर निकल जाओ।

सर का बोझ कुछ ढीला हो गया था। घास सरक कर गरदन के आस पास इकट्ठी हो रही थी। तिलोक देख नहीं सका था, आवाज़ पहिचान कर बोला—जानकी बुआ, तहसीलदार आ गया है आ जानें दो। अब तो जो कुछ होना है होकर रहेगा। अभी तो यह गली का तहसीलदार मारे डालता है, आगे की कौन जाने? और घर का भेदी लंका ढाह, भाई न दुश्मन होता तो किसी की हिम्मत पड़ती।

बुढ़िया कुछ मुँह के अन्दर कहती हुई घर में घुस गई। तिलोक हाँफता हुआ कीचड़ के फौजी जूते पहिने बाहर निकला। बैल को पुचकार कर साँस ली। घर पास ही था। गरदन का दर्द दोनों

भुजाओं की नसों को चीरे डालता था। दिल धड़क रहा था।

अपने चबूतरे पर घास का गट्ठा फेंक, स्तब्ध, मूक देखता रहा तिलोक। धूम-धाम, चहल-पहल और मूर्तिवत सुनता रहा शहनाई के स्वरों का आलाप। शहनाई बजाने वाला इस समय मस्ती में झूम रहा था। सभी सुनने वाले मंत्र मुग्ध थे। तिलोक के हृदय में शहनाई के नाद से एक अपूर्व आनन्द आन्दोलित हो उठा। मुख पर प्रसन्नता की रेखायें क्षण भर को बिजली की तरह चमकीं और आँखों में घना अँधेरा भर कर लीन हो गईं बैल की रस्सी में। तिलोक चौंका। अभी उसके हाथ में बैल की रस्सी थी और कुछ न था। अपने पर झुँझलाया। बैल को खूंटे में बाँध अपने चबूतरे पर तन कर खड़ा हो गया।

मुक्ता के घर में एक नये प्रकार के कौतुक ने जन्म लिया था। लड़के की छठी थी। डेढ़ सौ में शहनाई और अंगरेजी बैण्ड वाले किये गये थे। बड़े जशन थे। औरतें घर के भीतर बाहर आतीं जातीं काले-काले घूँघट उठाकर देख लेतीं, शहनाई का छोटे-मोटे बकरे जैसा आकार और गाल फुलाते, आँखों को खोलते मूँदते हुए शहनाई बजाने वाले को।

बावले गाँव में यह ऊँट पहिली ही बार आया था। जिसने भी सुना वही देखने दौड़ा। मकान के दोनों चबूतरों पर खड़ी, नंगी, पेट निकाले, काली-पीली आकृति की, धूल भरी छोटे-छोटे छोकरों और

छोकरियों की भीड़, सुन रही थी शहनाई और देख रही थी शहनाई बजाने वाले का नाचना। बड़े खुश थे, आपस में कहते, आज स्वाँग होगा। श्रीकिशन की मण्डली आयेगी। चलो अभी घर का सब काम-काज समेट लें।

तिलोक चबूतरे पर खड़ा देख रहा था। दरोगा जी, पंडित जी तथा गाँव के जमींदार चौधरी साहब और हलके के डाक्टर तास खेल रहे थे। मुक्ता उनकी आवभगत की दौड़-धूप में बार-बार भीतर बाहर आता जाता, कभी किसी को तो कभी किसी को बुलाता काम सहेजता, फिर कमरे में दाखिल हो जाता।

मुक्ता के जीवन में यह पहिला अवसर था जब दरोगा जी मुक्ता के मेहमान बनकर आये। चौधरी साहब जब भी इस गाँव आते हैं मुक्ता के यहाँ अवश्य आते हैं। मुक्ता प्रसन्न है। बाप लाल पगड़ी देखकर घर में घुस जाता था, वह दिन उसे अच्छी तरह याद है जब अगस्त आन्दोलन के सिलसिले में दरोगा जी तिलोक को पकड़ने आये थे, बाप ने दरवाजा बन्द कर लिया था और तिलोक को घर के पीछे से भगा दिया था और चौधरी साहब के हाथों इन्हीं दरोगा जी को सौ रुपया देकर पूजा की थी। फिर भी तिलोक को जेल जाना ही पड़ा था। तब यही चौधरी साहब कहते थे कि पुलिस अपने बाप की नहीं होती। वही दरोगा जी हैं जो आज मुक्ता के दोस्त हैं। मुक्ता जिसे चाहे उसे दरोगा जी बैल बना सकते हैं। मौत के घाट उतार सकते

हैं किसी को पता भी नहीं चल सकता।

मुक्ता की सबसे बड़ी मुराद पूरी हुई थी। कई लड़कियों के बाद यह पहला लड़का पैदा हुआ था। तिलोक के लड़के ही लड़के थे, इससे मुक्ता को अक्सर जलन हुआ करती थी। आज मुक्ता का जी चाहता कि वह दिल खोल कर रुपया लुटाये। इसीलिए तो उसने पैदा किया है। बाप के मरते समय तिलोक जेल में था उसकी गैर-हाजिरी में मुक्ता ने आढ़त की दुकान खोल ली थी। साढ़े बारह सेर का गेहूँ भर लिया था, ढाई सेर की बेच में अच्छा खासा अमीर बन गया था। तिलोक से कोई वास्ता न था, दोनों भाइयों में बाप के सामने ही बटवारा हो गया था। बाप दोनों से अलग रहता था, बुड्ढा था, एक बरोठा अपने लिये छोड़ लिया था।

दरोगा और तहसीलदार को खिला पिलाकर मुक्ता ने कन्ट्रोल के कपड़े की दूकान ले ली थी। आस-पास के गाँवों में चर्चा थी कि मुक्ता इस लड़ाई में धनी हो गया। सबसे बड़ी बात यह थी कि हाकिम हुक्कामों से मुक्ता के अच्छे रसूक हो गये थे। उससे ईर्ष्या या दुश्मनी रखने वाले उसका कुछ बिगाड़ न सकते थे। बरोठा और नीम, के नीचेकी नाँद और खेत की मेड़ पर के एक बबूर के मध्ये दोनों भाइयों में झगड़ा हो चुका था। तिलोक काफ़ी पिटा था। पंचायत हुई थी, चौधरी साहब सरपंच थे। नीम का पेड़ और बरोठा मुक्ता को मिला था। बाबा का लगाया हुआ नीम का पेड़ जब मुक्ता ने कटवाया था

तिलोक बड़े-बड़े आँसुओं रोया था। बाप के बरोठे वाली जमीन पर संगमरमर का शिवाला और सीमेंटदार कमरा जगमगा रहा था। पंडित जी, चौधरी साहब, दरोगा जी और हरहा डाक्टर शराब की प्यालियाँ ढाल रहे थे। मुक्का भी बराबर बैठकर साथ दे रहा था।

तिलोक अब अधिक देर तक यह सब कुछ न देख सका। मनमें तरह-तरह के संकल्प-विकल्प बरसाती घास की तरह उगने लगे थे। दरोगा और चौधरी साहब को देखकर आँखों में खून उतर आया। तिलमिलाया, पर बेबश था। उसका भाई जब उसका दुश्मन है, एक भुजा ही टूटी हुई है तब वह कर ही क्या सकता है। उसकी गरीबी उसकी पुतलियों के सामने घेरकर खड़ी हो गई। फिर तहसीलदार की याद आई। सारा गुस्सा क़ाफ़ूर हो गया। धूप में खड़े-खड़े माथा ठनकने लगा था। अचानक उसकी नज़र अपने लड़के पर पड़ी जो छोटे भाई को कन्धे पर बैठाले लड़कों की भीड़ में मिला बाजा सुन रहा था। तिलोक ने कड़क कर आवाज़ दी, साले चलता है कि खोद कर वहीं गाड़ दूँ आके। बहुत बाजा सुनना है तो घर में बैठ के थाली बजा ले। सुनता है कि नहीं।

किवाड़ों के सहारे, उदास, मन मारे खड़ी तुलसा देख रही थी सामने की चहल-पहल और उससे पैदा होने वाली पति की उद्विग्नता और अन्तर की भभकती हुई आग, जिससे वह स्वयं जल रही थी। मुक्का तिलोक का सगा भाई तुलसा का देवर, उसके भतीजा हुआ, वह खुश

हुई थी लेकिन आज छै दिन बाद जब भतीजे की छठी है, सारे गाँव की औरतें अपने-अपने धराऊ कपड़े पहिन मुक्ता के घर आई', सोहर गा रही हैं, 'लहुरी के भये नंदलाल' जेठानी को, जेठानी को नेवता तक नहीं। वह उसमें शामिल भी नहीं हो सकती। इतना बैर ! अब एक-एक करके सारी रंजिशें तुलसा की आँखों में फिर से ताज़ी हो गईं, सिर घूमने लगा। अचानक उसने देखा, तिलोक लड़के का हाथ पकड़े भीड़ से घसीटता, क्रोध में पागल चला आ रहा है। बड़े-बूढ़े चिल्लाये तिलोक आदमी बन बच्चा है, पर तिलोक किसी की कान नहीं देता। सारी गुस्सा, सारी रंजिश लड़के से भँजा लेना चाहता है। क्यों गया था साले ! तू भी मेरा दुश्मन बनेगा। साँप बनकर तू भी दूध पी रहा है और तू भी मुझे ही डसेगा।

लड़का हिचकियाँ भरता, अज्ञात अपराध की अकारण, सज़ा, चारों तरफ़ बचाने के लिये दीन आँखें फैलाता और छोटा बच्चा उसकी पीठ पर चीख़ कर चिपट गया था। तिलोक उसे चबूतरे पर ठसेरने ही वाला था कि तुलसा बीच में आ गई। रुँधे हुये स्वर में बोली ये का जाने दुश्मन और मीत, चलो घर चलो, दोपहर लौटी, यहिसे का लाभ। तिलोक घर के अन्दर घुसा। दोनों लड़कों का रोना अधिक तेज़ हो गया। दरवाजा बन्द हुआ लेकिन शहनाई वैसी ही गूंजती रही।

चने की काली-काली रोटियाँ और उसेई हुई आम की गुठली

जिन्हें वह नित्य बड़े चाव से खाता था, आज उसके मुँह में न धँस रही थीं। उसे ऐसा जान पड़ता था कि सारी भविष्य की आशंकायें रोटियों और गुठलियों में आकर लिपट गई हैं।

तुलसा, अपना भारी पेट सँभाले पति के मुँह की बनती मिटती रेखायें निहार रही थी। वह पति से कहना चाहती थी कि तुम्हारे ही अन्दर नहीं बल्कि हमारे ऊपर भी एक बहुत बड़ा तूफ़ान है जो रोके नहीं रुकता। समूचे गाँव की औरतों को छठी का बुलावा, खाली हम, हमारा घर का, हमें नहीं खटकत, जिउ जरायेसे का, भगवान मालिक है।

भगवान, भगवान होत तो का कहँ का रहै। झूठ मूठ का भगवान, धोखा, बिलकुल धोखा है। जुल्म, चोरी, डाका और अधरम से पइसा बटोरने वाले मजा करें और मेहनत मसक्कत कर भगवान के सहारे रहने वाले मौत का दरवाजा देखें मुसीबत झेलें। वाहरे भगवान तिलोक और भी कुछ आगे कहना चाहता था कि फिर तुलसा बोली।

राजा हरिश्चन्द्र पर कैसी-कैसी विपदा आई पै उइ सत्य से न टरै, भगवान सब के परख लेत है। वे सब कुछ देखत है।

इतने ही में किसी ने आवाज दी, तिलोक समझ गया। तहसीलदार का डर उसे खाये जा रहा था। मुँह का कौर न अन्दर जा सका और न बाहर, गुमसुम होकर आहट लेने लगा। तब तक फिर आवाज़

आई। छिपने से काम न चलेगा जल्दी निकलो। बच्चू नहीं दरवाजा तोड़कर बाँधे जाओगे।

तुलसा, घबराई, उसके पेट का दर्द जो अभी तक मधुर-मधुर हो रहा था और तेज हो गया, बोली—हम कहे देती हैं कि परसंदेपुर गये।

तिलोक—नहीं, झूठ कब तक काम देई। बुरा हो मुक्का तेरा, मैं तेरा कुछ बिगाड़ नहीं रहा था। तेरा ही यह सब लगाया हुआ है। जुल्मी राज, घूसखोर अफ़सर, सहना सिपाही, सब तुझे मिल गये, कर ले जितना तेरे जी में आये। बड़े लड़के की तरफ़ इशारा कर, देख मैं जाता हूँ तू मेरे पीछे ही बैल लेकर हार चले जाना। मुक्का और चौधरी की डाढ़ उसी पर लगी है।

तिलोक उठा ही था कि बाहर से किवाड़े भड़भड़ाये गये, वह ज़ोर से बोला, कौन है नहीं मानता, कह तो दिया कि रोटी खाकर आता हूँ।

बाहर से हाँ अभी तू रोटी खायेगा, फिर सोयेगा और गायब भी हो जायेगा। देखा गुलशन अभी तक साला अंकुर भी नहीं रहा था। खैर निकलने दो अब कहाँ जायगा।

तिलोक दरवाजे तक पहुँच तो गया पर हिम्मत नहीं पड़ रही थी कि जंजीर खोलकर बाहर आये कि एक साथ कई लातें किवाड़े पर पड़ीं। किवाड़े धड़ाक से खुले और तिलोक के ऐसे लगे कि वह वहीं

गिर पड़ा।

गुलशन झपट कर तिलोक को पकड़ते हुये, अरे अभी न जाफ़ आये अभी तो तहसीलदार के सामने चलना हैं बच्चू। तीन बार मुझे दौड़ाया है। अब कहना कि झूठ लिखा गया है। आज मारते-मारते गू निकाल लिया जायगा।

तिलोक ने कहा मुझे छोड़ दो मैं भगने वाला आदमी नहीं हूँ।

सुमेरसिंह इस बदमास के कहने में न आना। गुलशन क्या देखते हो ? कुन्दन अमीन साहब के साथ तो रोज़ ऐसे लोगों से पड़ता होगा, लगाते क्यों नहीं साले दो घेचे गरदन पर।

तिलोक, अरे दइया रे मार डालो, अरे बाप रे, तिलोक घसिटता हुआ तहसीलदार के यहाँ जा रहा था। घूम-घूम कर घर की ओर देखता, लड़का बैल लेकर चुपके से निकल गया था। तुलसा पीछे-पीछे चिल्लाती रोती आ रही थी। मुक्का कमरे के चबूतरे पर खड़ा सिगरेट की चुस्कियाँ ले रहा था। ख़ुश हो रहा था। उसकी सारी कारगुज़ारी सफल हो रही थी। तहसीलदार उसकी बात न मानता, पर दरोगा जी ने कह दिया था।

गोदीन मुखिया के द्वारे ऊँची चारपाई पर चौधरी साहब तहसीलदार और अमीन साहब बैठे थे कुछ आदमी खड़े-खड़े तहसीलदार से गल्ला जमा करने के वादे कर रहे थे। सिपाही तिलोक को लिये हुये पहुँचे।

तहसीलदार—क्यों, नहीं आ रहा था न ।

हुजूर, रोटी खाते पकड़ लाये तिलोक ने कहा ।

सुमेरसिंह, साला झूठ बोलता है, अटारी से चढ़ कर भागा जा रहा था । क्यों गुलशन, हम लोग अगर जरा भी चूक जायँ तो चकमा दे जाय हजूर ?

कुन्दन. हजूर, काटता है साला, और अपना कुरता समेट कर बाँह दिखाने का बहाना करने लगा ।

तिलोक, हजूर, सब झूठ है, आप माई बाप हो, ईसुर जानत है जो......

तहसीलदार, ईसुर की ऐसी तैसी, बनाओ इसको साले को मुर्गा, बनाओ मुर्गा, चढ़ जाओ सब लोग । लादो साले की पीठ पर यह लक्कड़ और खुद तहसीलदार की बेंत तिलोक पर चलने लगी । तिलोक चीखता चिल्लाता : तुलसा दौड़ कर तिलोक से लिपट गई, मार डालो मार डालो हमहूँ का मार डालो ।

तहसीलदार ने कड़क कर कहा, गुलशन इस छिनाल कुतिया को अलग करो ।

गुलशन, उसे पकड़ तिलोक से अलग खींचता, और तुलसा तिलोक से लिपटती जाती, तमाशबीन गायब हो चुके थे । तहसीलदार के बेंत, बूट की ठोकरें बराबर चल रही थीं । तुलसा के पेट में खींचकर तहसीलदार ने एक ठोकर लगाई । तुलसा हाय राम कर वहीं लोट गई । तिलोक

पिटते-पिटते बेहोश हो गया।

अमीन ने कहा—इसका बैल कहाँ है?

कुन्दन—साहब उसको तो इस साले ने पहिले ही गायब कर दिया था। हम लोग इसको पकड़ने में लग गये। नहीं हजूर यह भाग निकलता।

चौधरी साहब, तहसीलदार की ओर प्यासी आँखों से देखते हुये हुजूर कहें तो अभी हम ढुँढ़वा मँगायें।

हाँ, हाँ, आप क्यों नहीं मँगवाते हैं, मैं किस लिये आया हूँ, अमीन ने कहा।

अभी पता लगवाता हूँ, चौधरी साहब ने कहा।

तिलोक के हाथों और पैरों की गदेलियों पर अभी तहसीलदार की बेंत चटख रही थी। तुलसा एक तरफ बेसुध पड़ी थी। एक बार बड़ी जोर से कराही और देखते ही देखते उसका लँहगा लोहू से डूब गया।

गुलशन—भौचक्का सा हजूर-हजूर! तहसीलदार, क्या है, हुजूर हुजूर क्यों पकड़े क्यों नहीं रहता।

हजूर, औरत को यह क्या हो गया गुलशन ने कहा।

तहसीलदार—मर जाने दे साली को क्यों आई थी यहाँ, कुछ सिस्की बट रही थी और क्रोध से पागल, बेंत जमीन पर फेंक कर बन्दूक की नली चारों ओर घुमाते हुए कहा। किसी साले ने कहीं भी अगर कहा तो उस साले की भी यही हालत होगी।

चौधरी साहब, नहीं हुज़ूर कोई नहीं कहेगा। अब रहने दो हुज़ूर भरपाया सालों ने, अब कभी गुस्ताख़ी न करेंगे।

तिलोक को होश आया, तुलसा पर नज़र पड़ी, मुँह से निकला, मार डाला, मार डाला, और फिर बेहोश हो गया।

तहसीलदार ने तड़पते हुये कहा, बाँध दो साले की आँखों और मुँह में पट्टी।

तिलोक ने हाथ जोड़े पर तहसीलदार का हुक्म न टला।

आगे-आगे बैल को पकड़े हुये चौधरी साहब के आदमी और पीछे रोता हुआ लड़का आया। तहसीलदार ने कहा कि चौधरी साहब बैल तुम्हारे सुपुर्द है। रुपया भेज देना और देखो यह साला कहीं आने-जाने न पावे, मैं ऊपर सब सँभाल लूँगा। अगर औरत मर जाय तो कोई डरने की बात नहीं है। मुक्खा से बुलाकर कह दो कि इन सालों को देखे रहे। हम लोग जाते हैं।

समूचा खेमा उठकर चला गया।

रोता हुआ बैल गया, हँसते हुये चौधरी साहब गये। तिलोक और तुलसा वैसी ही हालत में उठाकर घर में डाल दिये गये। मुखिया के दरवाजे पर मरघट का सन्नाटा छा गया।

तिलोक को फिर होश आया, छटपटा कर उठा। बच्चे आस-पास रोते-रोते सो गये थे। उसे जान पड़ा कि शहनाई अब भी बाज रही

है। चौंका। मुक्का डबडबाई आँखों से देख रहा था। तुलसा अन्तिम साँसें ले रही थी और सामने बिखरी पड़ी थीं। उसेई हुई आम की गुठलियाँ।

२३—८—४६

लाठियों के साये में

मैं लखनऊ से इलाहाबाद जा रहा था। कोई मेला लौटा था, इसलिए भीड़ का कुछ ठिकाना न था। इन्टर-थर्ड सभी भरे थे। मैं मुश्किल से इन्टर के कम्पार्टमैन्ट में दाख़िल हो पाया। आख़िरी सीटी भी बोल दी। भीड़ के कारण लोग पसीने-पसीने हो रहे थे।

पसींजर गाड़ी थी स्टेशन-स्टेशन रुकती, कुछ उतरते, चढ़ते अधिक। अब की स्टेशन में इस कम्पार्टमेन्ट से काफी लोग उतर गये, हवा लगी, जी में जान आई। अरे यह क्या ? सब देहाती इसी इन्टर में, बाबू लोग चिल्लाये, ड्योढ़ा है, ड्योढ़ा है पर किसी ने न सुना।

सामने की वर्थ पर बैठे एक बाबू जी हिन्दी का अखबार पढ़ रहे थे। वर्थ के बगल की झिरी में खड़ा देहाती किसान आँखें फाड़ फाड़कर अख़बार की मोटी लाइनें देख रहा था, समझने का प्रयास करता हुआ बोला, अख़बार का लिखत है बाबू जी।

बाबू जी ने अपना सर ऊपर को उठाया और मुस्कराते हुये बोले—अब क्या है, अब तो स्वराज हो गया। जवाहर लाल वैदेशिक मन्त्री हुये!

देहाती जैसे इस सत्य के प्रति विश्वास न कर सका। विद्रूप मुस्कराहट के साथ बोला—हमरी समझ मां तो कुछ नहीं आवत बाबू जी, जबते जमींदारी मिटावें का बिलु पास भा तबते जमींदार ताल्लुकेदार और आफ़ति जोते हैं।

बाबू जी ने देहाती को रोककर कहा, अब आहिस्ता-आहिस्ता सब कुछ हो जायगा। कांग्रेस ने इन्ट्रिम गवर्नमेन्ट मंजूर कर ली है। प्रतिनिधियों का चुनाव हो गया। अब नये-नये कानून बनाना इन्हीं लोगों के हाथ होगा, तुम्हारे फ़ायदे के कानून बनायेंगे। अब तक जो जुल्म तुम लोगों पर होते थे उन्हें मिटाने का प्रयत्न करेंगे।

देहाती की आँखों में क्रोध की चिनगारियाँ फूट रही थीं। अविश्वास और गहराई पकड़ रहा था, तेज आवाज़ में बोला।

बिना अंगरेज का निकारे सुराजु मिलिगा, तब तौ वो किसान मजूर का सुराज नहीं जमींदार तालुकेदारन और बड़े-बड़े धनिन का सुराज होई बाबू जी। आजु कालि तौ येई लोग कांग्रेसी हैं। लाठी, डन्डा, गोली जेल मिली गरीबन का और मजा करिहैं नेता बनि-बनि राजा-महाराजा। अबै तक मरे, मिटे, गोली खायनि किसान, मजूर, जब फल लागैं के बिरिया आई तब गुण्डा, पण्डा जुल्मी सबै खद्दर का बाना धरि लिहिन। असेम्बलिन के मेम्बर बनिगे। अब जवाहिर लालौ बनिगे सलाहकार वाइसराय के इनके बूते बरे कुछु न होई बाबू जी।

मैं विस्मय में डूबा उस देहाती की सारी बातें सुन रहा था कि बाबू जी ने फिर कहा, आहिस्ता-आहिस्ता सब कुछ हो जायगा। अँगुली पकड़ कर पहुँचा पकड़ा जाता है।

अब मुझसे न रहा गया, मैंने कहा, हाथी के दाँत दिखाने के और खाने के और होते हैं। आहिस्ता-आहिस्ता अंगरेजों ने समूचे हिन्दुस्तान को हथिया लिया था। दाना-पानी तक उनके असर से नहीं बच सका। जब हमने आहिस्ता-आहिस्ता सर उठाना शुरू किया तो उन्होंने आहिस्ता-आहिस्ता कुचलना शुरू किया। जब आहिस्ता-आहिस्ता हम कुरबानियों द्वारा जागृति पैदा करने लगे तब आहिस्ता-आहिस्ता उन्होंने गोली, डन्डा, जेल और कड़ी से कड़ी यातनायें देना

और खून बहाना शुरू कर दिया। मगर हम तब भी न रुके, बढ़ते गये, तो उन्होंने फूट के बीज बोने शुरू किये। हम आहिस्ता-आहिस्ता उन्हें मिटाने का प्रयत्न करते रहे और वे आहिस्ता-आहिस्ता अंगरेजी राज और अमन के लिये दमन करते गये।

बाबू जी ने कहा, "आप शायद वामपक्षीय जान पड़ते हैं। ये लोग नहीं चाहते कि इन्टरिम गौरमेन्ट बने। कांग्रेस के हाथों में पावर आई है, यह लोग तरह-तरह का वावेला खड़ा कर रहे हैं, हड़तालों के मारे आफ़त किये हैं।"

मैंने कहा, हुजूर न मैं वामपक्षीय हूँ न दक्षिणपक्षीय; पर देखता सब कुछ हूँ। मैं कहता हूँ कि पूछिये इन गरीब देहात के रहनेवालों से जिनके ऊपर रोज एक न एक मुसीबत बिजली बनकर टूटती रहती है। उन किसानों से पूछिये जिनकी जमीनें जमींदार तालुकेदार कांग्रेस का चोंगा पहिन कर जबरन छीन रहे हैं। उन मेहनतकशों से पूछिये जो बैल की तरह मशीन पर अपनी मेहनत बेचते हैं, दस-दस घन्टे आग की लपटों में तपस्या करते हैं और शाम को रोटी के टुकड़ों के लिये घर पर कुत्तों की तरह झगड़ते हैं।

क्या इसी इन्टरिम गौरमेन्ट के लिये कांग्रेस प्रति वर्ष प्रतिज्ञा दोहराती आई है? क्या इन्हीं सुधारों के लिये लाखों सुहागिनों ने अपने-अपने सुहाग निछावर किये थे? क्या वायसराय के सलाहकार बनने के लिये ही जवाहर लाल की आवाज़ पर किसानों ने जुर्माने,

भुगते, जेल की कड़ी से कड़ी यातनायें सहीं, तरुणों ने रंगीन जवानी गोलियों की नोकों पर चढ़ाई ! क्या इसी मंजिल पर पहुँचने के लिये १६४२ की डींग मारी गई, जय हिन्द के नारे लगाये गये ! क्या इसी दिल्ली के लिये 'दिल्ली चलो' का नारा बुलन्द किया गया था । क्या इसी अँधेरे में रहने के लिये आजाद भगत जैसे लाखों सपूतों ने बलिदान दिये, जबलपुर, बिहार, बलिया, तिमूर, बम्बई, लाहौर, कलकत्ता और कश्मीर की जनता ने गली कूचों और सड़कों पर खून के दरिया बहाये ! जान मथाई और टाटा के डायरेक्टर एस० एच० भाभा इन्टरिम गौरमेन्ट के प्रतिनिधि ! फिर बोलो स्वराज्य किसका, टाटा और विड़ला का या किसान और मजदूर का ! और, और सरदार पटेल वे तो पहले डाकियों की हड़ताल तुड़वा कर यश कमा चुके हैं और आप इन्हीं के बल पर आहिस्ता-आहिस्ता सब कुछ हो जाने की बातें करते हैं ।

अब की बाबू जी के न बोल था ना वाचा थी । समूचे कम्पार्टमेन्ट में सन्नाटा था, किसी की भी हिम्मत न हुई जो इन बातों का जवाब देता । बल्कि अधिक लोग मुँह फैलाये सुनते रहे और बोले, यह तो सही बात है । हाँ, उस देहाती की आँखों में जैसे नई रोशनी आ गई हो, अपनी जेब टटोल दो पर्चे निकाले और मुझे दिखाता हुआ बोला, "क्यों बाबू जी पढ़ो इसमें कांग्रेसी के दांव पेंच ।"

मैंने एक पर्चा खोला । पर्चा लम्बा लम्बा था; सबकी आँख मेरी ओर घूम गई । मैंने पढ़ना शुरू किया—"शिवगढ़ राज्य की

गुण्डाशाही ।"

मैं पर्चा जोर-जोर पढ़ रहा था। अभी दो मिनट पहले की सारी बातें तस्वीर बनकर सभी मुसाफिरों की आँखों के सामने नाचने लगी।

यू० पी० सरकार के शासन और पुलिस मन्त्री के दोस्त बड़ी असेम्बली के कांग्रेसी मेम्बर शिवगढ़ के राजा के खूनी कारनामे। पेशकार और मैनेजर के रियासती रियाया को लूटने के दाँव-पेंच। रामपुर, पहाड़पुर, सिंहपुर, गुकुलन पुरवा, लियाकत पुरवा, पदमपुर चितई खेरा, बरौदा और ठकवा आदि के किसानों की पुश्तैनी जमीन बिना बेदखली के छीन ली गई। ब्राह्मण, ठाकुर, लोद, कुम्हार, काछी, अहीर, पासी, मुसलमान, कोई भी नहीं बचा जो इन रियासती दरिंदों द्वारा न सताया गया हो! जुर्माना, डण्डा, बेंत, मुर्गी बनाना, टाँगें फैलाकर दस-दस घंटे कड़ी धूप में अधमरे किसानों से तपस्या कराना आदि तो ताल्लुक के आम रिवाज है; औरतों को नंगी कर थूकने, उनके साथ मनमानी करने के लिए पेशकार के गुन्डे लुच्चाड़ों को पूरा स्वराज्य है। अस्पताल, दंगल, रियासती मेला और राजनैतिक संस्थाओं के नाम पर गरीब किसान बेवा औरतों तक को उनकी बिना मर्जी के चन्दा लिया जाता है, जबरन लूटा जाता है। पेशकार नरमदेश्वर से लेकर डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के डाक्टर और कम्पाउण्डर तक खेत चराते हैं। रियासती काम के अलावा इन लोगों का भी काम हरी बेगार से ही चलता है।

इसी लूट-खसोट, धौंस, बेगार, बेइज्जती, नज़राना, और मनमाने ज़ुल्मों के विरुद्ध किसानों का साथ देनेवाले, तपस्वी कर्मठ किसान नेता पं० जितेन्द्रनाथ तिवारी को, इन्हीं पेशकार और मैनेजर ने अध-मरा कर जंगल में छोड़ दिया था। वे लोग समझते थे कि जिन्दा भी रहेगा तो जानवर खा जायँगे। पर किसानों का लाड़ला अगर है, तो उसे किसानों के बीच में से ले जाने की मौत तक में हिम्मत नहीं है।

उसने कहा, "आजु यही बरे बाबू जी ढकवा माँ जमघट्ट है। आजु शिवगढ़ के राजा का जानि परी, भूखे बाघन का छेड़बु अब समझ माँ आय जाई।"

मैंने उन बाबू जी को अपनी ओर मुखातिब करते हुये कहा, "अब कहिये बाबू जी किसको स्वराज्य मिला है?" बाबू जी चुप थे। देहाती बोला, "अरे राज ऐसे ही मिलै लागें तौ खून न बहावै का परै। महा-भारत काहे का होत, अठारह अक्षौहिणी आदमी ऐसे ही न समा जात मौत के मुँह माँ। बाबू जी बिना खून के सुराज उराज नहीं मिलै का। जोत, थई, माड़ी कुठी, खून पसीना एक करी हम औ मजा करैं लुटेरे, डाकू, भेड़िये शिवगढ़ के राजा। अब आजु जानि परी शिवगढ़ राजा का बाबू जी। वा घमाचौथि होई कि गुण्डन का भागे राह न मिली। बड़ी भीरें हुइ है बाबू जी।"

"तो मैं भी चल सकता हूँ। कितनी दूर है?"

उसने कहा, "बस, दस मील बाबू जी, देखि लेब जीते जिन्दगी का

मेला है। लो बाबू जी आया स्टेशन।"

मैंने झाँक कर देखा और इलाहाबाद के बीच ही में उतर पड़ा। देश में निर्माणकारी शक्तियों को हुड़ह, और क्रूर दानवी शक्तियों के अस्त होने का नाटक न देखना मेरे लिये असम्भव जान पड़ा। स्टेशन का नाम था बधरावा, बाहर निकलकर देखा, सामने लाल और तिरंगे झण्डे दिखाई दिये। एक नये प्रकार के उत्साह का जन्म हो चुका था, अब और जोश उभर आया।

स्टेशन से डेढ़ फर्लाङ्ग पर बाजार था। मिठाई पानवाले सभी रौद्र रूपधारी जान पड़ते थे। इक्के तांगे मेरे पहुँचने के पहिले ही भर गये थे। मैंने कहा, "क्या सवारी न मिलेगी?" उसने कहा, "चलो हम बैठाये देते हैं।"

पान की दूकान पर मैं पान खाने लगा। इसी बीच में उसने मेरे लिये सवारी का इन्तजाम कर दिया।

उसने कहा, "बैठो बाबू जी।" मैंने कहा, "लो पान खाओ।" उसने कहा, हम पान नहीं खाइत बाबू जी अब। हम तौ दंगल माँ मिलिबे।" मैं जिस तांगे में बैठा था तीन आदमी और बैठे थे। एक का नाम था रघुनाथ और दूसरे तीसरे का नाम मैं न जान सका। दूसरे बछरावाँ के झिझकते हुए बढ़नेवाले कांग्रेसी जान पड़ते और तीसरे साहब, रेशमी कुरता खड़े कालर का पहिने, लम्बे-लम्बे बाल, चश्मा लगाये, कुछ दुबले-पतले छैला बने; जान पड़ता था कि ससुराल जा रहे हैं।

मैं अपने कुतूहल को न रोक सका। पूछा, आप लोग कहाँ तशरीफ लिये जा रहे हैं।" सब ने कहा, "शिवगढ़।" मैंने कहा, "मैं भी वहीं चल रहा हूँ।" "बड़ीअच्छी बात है, बड़ी अच्छी बात है एक साहब ने कहा।

ताँगा चल दिया, घोड़ा तेज था, काफ़ी तेज था, बहुत से आगे जाते हुये इक्के ताँगों को पार कर गया, आगे बढ़ा चला जा रहा था। सड़क के दोनों तरफ क्षितिज को छूते हुये भाबर, धानों के लहलहाते हुये खेत, किनारे-किनारे खजूर, आम्र और इन पेड़ों के अगल बगल गड्ढों में लोटती हुई भैसें, और उनके इधर-उधर खेलते कूदते 'इन्किलाब जिन्दाबाद! शिवगढ़ की लड़ाई जीतेंगे!" कहते हुये छोटे-छोटे लड़के और लड़कियाँ विद्रोह कर रही थीं। कहीं-कहीं किसानों की टुकड़ियाँ लट्ठ लिये कदम बढ़ाती दिखाई देने लगी। ताँगा तेज था अब की पचास-साठ आदमियों का जुलूस झील के पानी में मझाता, नीचे जल, आँखों और भुजाओं में हरकत और लहराये हुये लाल झण्डे लिए 'किसान भगवान की जय।' के नारे लगाते हुए शिवगढ़ जा रहे थे।

मैंने ताँगेवाले से पूछा—अब कितनी दूर है। उसने कहा—इन पेड़ों की आड़ में। पेड़ भी आये और पीछे रह गये। मैंने पूछा, "किधर?" उसने अँगुली का इशारा किया। एक लम्बा खजूर का पेड़ था जिसकी सभी शाखायें सूख चुकी थीं और सबसे ऊपर नई निकलने

वाली कोपलें भी स्याह पड़ गई थीं एक बूढ़ा गीध किसी जानवर की मांस लगी हुई हड्डी मुँह में दाबे बैठा था और उसी की आड़ में आसमान की तरह दाँत निपोरता शिवगढ़ का दानवी किला काँप रहा था।

आज पहिली बार शिवगढ़ का ज़र, ज़मीन और रिआया एक होकर शिवगढ़ की सामन्ती बुनियाद ढहा देने के लिए, उठ खड़ी हुई है। आज पहिली बार शिवगढ़ के नीचे दबे, पिसे, छोटे बड़े सभी गाँव के गाँव सर उठाकर हूँ करने लगे हैं। शिवगढ़ डगमग डगमग डोल रहा है। उसके नीचे की धरती जवाब दे रही है, खिसक रही है। चारों तरफ से आवाज़ आ रही थी, जमीन किसकी, किसान की, हरी, बिगार बन्द हो। लहराते हुये लाल-लाल झन्डों के बीच-बीच में तिरंगे झन्डे भी अपनी परिपाटी क़ायम रखने के लिये सुर्ख बने जा रहे थे। सब शिवगढ़ जा रहे थे कोई उधर से आने वाला नहीं दिखाई दे रहा था। हाँ, डरा हुआ ड्राइवर, काँपती हुई कार और कार में बैठे हुये दो, कौन थे यह नहीं कह सकता, पर हवाइयाँ उड़ रही थीं। प्राण लिये, भागती कार में चले गये। सड़क पर जाते हुए किसानों के दल लाठियाँ उठा, मुट्ठी बाँध कर गरज उठते थे। भगा है भगा है।

ताँगा मोड़ कर रुक गया। सब लोग उतर पड़े, मैं भी। ताँगे वाले ने कहा, यहाँ से पास है, आप लोग तो यहीं उतरेंगे आपको कहिये उधर से पहुँचा दें। मैंने कहा, मैं भी चला जाऊँगा। पैसे दिये

और एक गाँव की ओर सबके साथ मैं भी चल पड़ा।

थोड़ी ही दूर पर रघुनाथ ने कहा, यह रास्ता ढकवा को गया है हम लोग तो पहिले रिस्तेदारी में जायँगे। आप आगे गाँव में पूछ लीजियेगा। मैंने बिना किसी बातचीत के उनका साथ छोड़ दिया और ढकवा वाली पगडन्डी पकड़ ली।

आगे कुछ आदमियों की भीड़ जा रही थी, कभी-कभी ज्वार के खेतों में छिप जाती थी लेकिन उनके झन्डे दिखाई देते रहते थे। मैं उन्हीं के पीछे-पीछे जा रहा था। मनमें कहा कि अब गरीब उठ चुका है उसे दबाया नहीं जा सकता। किसान मज़दूर और नौकर पेशा आज अपने अधिकारों के लिये सजग हैं। तैयार है रक्त से होली खेलने के लिये, तूफ़ानों से होड़ लेने के लिये। कलकत्ते में चालीस लाख की हड़ताल, काश्मीर में डोगरेशाही के खिलाफ़ गली-गली में खून की नदियाँ, रतलाम के जालिमों को आख़िर रक्त में डूबकर घुटने टेकने ही पड़े।

लेकिन यह क्या कलकत्ते में छुरेबाजी। भाई, भाई के खून का प्यासा। ३ हजार गोलियों से भून दिये गये। छोटे-छोटे दुधमुँहे बच्चों की गरदनें काटकर कीलों से दरवाज़ों पर ठोंक दिया गया। साठ वर्ष की बूढ़ी औरतों तक के स्तन काटे गये। शरत बोस का बयान! मुसलिम लीग की वज़ारत खत्म करने की वायसराय से प्रार्थना? ओह, इन्टरिम गौरमेन्ट, लीग कांग्रेस का विरोध करेगी, जगह-जगह आन्दोलन

करेगी। इन्साफ़ और अमन कायम रखने के लिये कांग्रेस गोलियाँ चलवायेगी। गोरे फौजी उछल-उछल कर गोलियाँ दागेंगे। वायसराय की शै होगी। समूचे देश में गृह-युद्ध (सिविलवार) की दुन्दुभी बजेगी। प्रजातंत्र और प्रगति के दुश्मन खुश होंगे। कूपलैण्ड योजना सफल होगी, और फूट परस्त फूले न समायेंगे।

मैं धीरे-धीरे आगे वाले गिरोह से जा मिला। ढकवा पास ही था। वे लोग आपस में बातें कर रहे थे। कांग्रेस वाले बिघनुडरिहैं। गाँव-गाँव डुग्गी पिटवायनिहैं कि सभा न होई। सुना है कि लाल साहब से-मरी और कुछ कांग्रेसी नेता शिवगढ़ के दरबार माँ हाजिर हैं।

अब मेरी सारी शंकायें और घनी हो गईं। ढकवा भी आ गया। गाँव में किसी प्रकार का जोश—उत्साह न जान पड़ा सब अपने-अपने काम में लगे थे। कुछ लोगों ने गाँव के आदमियों से कहा चलो भाई हम लोग तौ चालिस-चालिस मील ते आये हैं, तुम्हरे हियन सभा है। का बात है कि मुर्दनी दिखाति है। गाँव के आदमियों ने कहा चलौ हम सब लोग आइत है।

गाँव के पास ही कुछ दूर पर एक बहुत बड़ा बगीचा था। आस पास नागबेलि, बड़ी-बड़ी घास, चारों तरफ़ खाईं, दो-तीन खाटें उन पर पुलिस के छोटे अफसर और दस पन्द्रह पुलिस के सिपाही। कुछ दूर पर पचास-साठ किसानों का एक गिरोह और दो-दो चार-चार आदमी इधर-उधर बैठे थे। मैं एक डाल के सहारे खड़ा हो गया।

डुग्गी की आवाज, कांग्रेस सरकार बहादुर का हुकुम है कि लाठी डन्डा और पाँच से ज्यादा आदमियों पर एक सौ चवालीस है। गिरफ्तार कर लिये जाओगे। डोमार चिल्लाता चला गया। एक बड़ी सी भीड़ लाल झन्डे लिये आ गई, नारे जोर पर थे। पुलिस वाले उठ उठ कर खड़े हो गये। भीड़ उसी गिरोह में जा मिली। मुँहामुँही के बाद फिर नारे, फिर डुग्गी, एक दरोगा ने कहा तुम सब लोग यहाँ से चले जाओ। १४४ है नहीं गिरफ्तार कर लिए जाओगे। पर दरोगा की किसी ने न सुनी, वह वापस गया। एक जत्था और आ गया, नारे और तेज हो गये एक जत्था और आ गया। अब दरोगा गुस्से में था। बोला, सब लोग अपनी-अपनी लाठियाँ दे दो। नहीं सुनते तुम लोग, यानी जबरन छीननी पड़ेगी ? चलो सिपाहियों सब की लाठियाँ छीन लो ? पाँच सात सिपाही उठ कर दौड़े। अरे यह तो वही रेशमी कुरते वाला मेरे साथ ताँगे में आया था बोला। किसान भाइयो, तुम जानते हो यह तुम्हारी लाठियां तो छीन कर रख लेना चाहते हैं क्यों अरे तुम्हारी पीठ पर डन्डा बरसाने के लिये। कोई लाठी न देना ? सब लाठियाँ अपने-अपने नीचे दाबकर बैठ गये।

दरोगा ने कहा, एक सौ चवालीस है, आप लाठियाँ रखवा दीजिये नहीं तो हमें जबरन छीननी पड़ेगी। वह बोला, आप बन्दूकें बल्लम और लाठियाँ लिए रहें और हम रखवा दें, वाह आप भी खूब आये, अरे तुम्हारे लिये एक सौ चवालीस नहीं है। दरोगा बिगड़ा,

आप क्यों तोहमत मोल ले रहे हैं। उसने कहा हम तोहमत मोल ले रहे या आप। हम तो आये हैं अपनी सभा करने और तुम आये हो हमारी सभा तोड़ने। दरोगा ने फिर कहा, तो तुम लाठियाँ न दोगे। सिपाहियो देखते क्या हो छीन लो।

सिपाही क्या छीनेंगे, किसानों यह तो तुम्हारे ही भाई बेटे हैं। इनसे पूछो कि इनके घर में कैसी बीतती है, बीबी बच्चे, माँ, बाप किस तरह की जिन्दगी बसर करते हैं। बड़े-बड़े अफ़सर हुक्म चलाते हैं, मौज करते हैं और इन बेचारों की मुसीबत, अरे अब यह भी हड़ताल करने की सोच रहे हैं, यह भी तुम्हारे साथ हैं। दरोगा फिर चिल्लाया। नहीं सुनते, और बौखलाया हुआ एक तरफ को दौड़ गया। सिपाही इधर-उधर जाकर खड़े हो गये। फिर नारे बुलन्द हो उठे। अब की एक नहीं दो दरोगा आये। सामने कुछ पुलिस के आला अफसर और तीन दस्ता मिलिटरी पुलीस संगीने खोले आकर डट गई।

रेशमी कुरता वाला जोर-जोर से बोल रहा था। अब यह बन्दूकें तुम्हारा कुछ नहीं कर सकतीं। अपनी लाठियाँ सँभालो ! तुम्हारा स्वराज्य इन लाठियों से ही होगा। कश्मीर के किसान मज़दूर गली-गली में खून की नदियां बहा चुके हैं। डोगरेशाही की बन्दूकें कुछ नहीं कर सकीं। अपनी लाठियां हाथ में लो। शिवगढ़ ने तुम्हारे कामरेड जितेन्द्र को पिटवाया अपमानित किया, तुम सभा भी नहीं कर सकते। यह लाठियां छीनकर, गिरफ्तारियां करना चाहते हैं। बोलो लाठियां

दोगे। नहीं, नहीं, नहीं, किसानों ने जोर देकर कहा। तो फिर लाठियाँ हाथ में करो।

दरोगा कुछ आगे बढ़कर, आपको गिरफ़्तार किया। क्यों? आपने १४४ तोड़ी है। अभी कहाँ, अब तोड़ेंगे। तब तक दूसरे दरोगा ने पीछे से आकर पकड़ लिया, वह झिटका देकर अलग हो गया और कहा, चलता हूँ। किसान घबराये, उसने देखा, और कई इशारे किये पर अभी किसान न उठा, वह चला गया बड़े अफसर के पास। बोला आपने क्यों बुलाया है।

बुलाया नहीं, आप गिरफ्तार कर लिए गये हैं। क्यों? एक सौ चवालीस तोड़ी है। अभी कहाँ? अभी तो सभा ही नहीं हुई फिर कैसे टूट गई, देखिये न अभी तो थोड़ी लाठियाँ हैं अब भीड़ आयेगी सभा होगी तब तोड़ूँगा चवालीस, तब गिरफ्तार करना।

नहीं, आप गिरफ्तार हो गये हैं। यह कैसे समझ लूँ कि मैं गिरफ्तार हो गया। आप कहते हैं, बस ना। मैं कहता हूँ कि मैं नहीं गिरफ्तार हुआ।

मैं मजिस्ट्रेट हूँ, और मैं किसान का बेटा हूँ, आपका नाम क्या है। मैं नाम न बताऊँगा। आप कैसी बातें करते हैं। जैसी आप चाहते हैं।

क्या?

हाँ,

आप शायर हैं।

नहीं, शायर नहीं, कवि हूँ।

सामने से एक हजार आदमियों का जलूस लाल झन्डे लिये नारे लगाता बाग़ में दाख़िल हो गया। समूचा बगीचा गूँज उठा। हरएक के चेहरों पर गुस्सा दिखलाई दे रहा था। खद्दर का कुरता और पायजामा पहिने एक नौजवान आया, बोला, मैं सम्वाददाता हूँ। मजिस्ट्रेट से और उससे बातें हुई। बात कर वह चला गया।

कवि ने कहा, देखिये मजिस्ट्रेट साहब मैं गिरफ्तार हो गया हूँ। मेरा सामान, ले आऊँ ? नहीं आप अब नहीं जा सकते, मजिस्ट्रेट ने कहा।

बगीचे के चारों तरफ खेतो से गोरिल्ला की तरह किसान नारे लगाते निकलते चले आ रहे थे। मजमा बढ़ता जाता था। पुलिस डी० एस० पी० और मजिस्ट्रेट ने आपस में बातें की। इसको (कवि को) यहाँ से भेज देना चाहिये। कवि ने चारों ओर नज़र डाली बोला, ओह, मजिस्ट्रेट साहब आपने मुझे गिरफ्तार कर लिया, बुरा किया, मैंने कविता लिखी थी इन लोगों को सुनाने के लिए। अब क्या हो ?

अब नहीं सुना सकते, मजिस्ट्रेट ने कहा तो फिर आपको सुनाऊँगा, कवि ने कहा और अभिनय करता हुआ मजिस्ट्रेट की आँखों से ओझल हो गया। पुलिस दौड़ी, पर वह निकल गया। मजिस्ट्रेट

डी० एस० पी० ताकते रहे। खोज हुई, वह न दिखलाई पड़ा। लाठियाँ बढ़ गई थीं। पाँच हजार से अधिक किसान आ गये थे।

बीच में खड़ा नवजवान चीख रहा था, गुस्सा था, ओज था, शब्दों में, बढ़ो, बढ़ो, बदला लेना है। मैंने देखा कि वह कवि, मुरैठा बाँधे, किसानों जैसी धोती पहिने, फटी बनियाइन में भीड़ में घुसा किसानों को उत्तेजित कर रहा था। भीड़ पुलिस की तरफ़ बढ़ती जाती थी। पुलिस पीछे हटती जाती थी।

एक गिरोह सामने से आता दिखाई दिया। अब वह मंच के पास तक घुस आया। एकाएक भीषण गर्जना हुई, मुन्शी कालिका प्रसाद जिन्दाबाद, जिन्दाबाद, जिन्दाबाद। एक काला गोरिल्ला नंगे बदन मंच पर आ धमका। फूलों की मालाओं से किसानों ने उसका गला भर दिया। मालूम हुआ कि इनका वारन्ट है। दारोगा वारन्ट लेकर आगे बढ़ा। मंच से आवाज़ आई, किसानों खड़े हो जाओ। किसान खड़े हो गये। दरोग़ा की हिम्मत न पड़ी, चला गया। मुन्शी कालिका प्रसाद बोले और ग़ायब हो गये।

पुलिस को चीरता हुआ एक जत्था बादलों की तरह फटा और एक दुबला पतला तेज अग्निबाण सा आदमी मंच के पहिले ही किसानों की गोद में बैठा मंच पर आ गया। भगतसिंह ज़िन्दाबाद, कामरेड शिव वर्मा जिन्दाबाद, जिन्दाबाद। कामरेड शिववर्मा फूलों से लद गये। बोले, कामरेड जितेन्द्रनाथ तिवारी को शिवगढ़ के

राजा ने इसलिये पिटवाया कि किसानों में जान न आने पाये उनकी मनमानी चलती रहे। इसलिये मरवा डालना चाहते थे कि वे किसानों की हरी, बिगार बन्द करने, जमीनों पर कब्जा करने के लिये किसानों का साथ देते थे। आज इसीलिये सभा की गई है कि शिवगढ़ के राजा अब सोचें कि अगर हमारे आदमियों पर किसी ने हाथ उठाया तो हम थप्पड़ का जवाब लाठी से देंगे। तड़तड़ तड़तड़ तालियों की आवाज़ आई। कामरेड शिववर्मा बोल रहे थे। दस-बारह हजार की भीड़ जोश में झूम रही थी। एक जोर का नारा लगा, किसान सिपाही भाई-भाई।

पुलिस के सिपाही एक दूसरे की ओर देखकर मुस्कराये। सबने अपने मन से कहा हाँ, किसान सिपाही भाई-भाई। सारा बागीचा गूंज रहा था। सबकी नज़रें किसी को ढूँढ़ रही थी कि एकाएक आवाज़ आई पं० जितेन्द्रनाथ जिन्दाबाद। जिन्दाबाद। दरोगा मजिस्ट्रेट और डी० एस० पी० आगे बढ़े और पस्त हिम्मत हो पीछे लौट गये। कामरेड जितेन्द्रनाथ मार और बुखार दोनों से पीड़ित थे फिर भी दस-बारह हजार किसानों का उत्साह उनका अकेले का उत्साह बन गया था। उन्होंने कहा, किसान भाइयो हम तुम्हारे सेवा के लिये बचे हैं, तुमने हमारे ही नहीं, अपने सब की प्राण रक्षा के लिये क़दम बढ़ाया है। आजादी माँगने से नहीं मिलती। एका की शक्ति ही पैगम्बर है। अस्वस्थ होने के कारण वे अधिक देर तक बोल न सके

बैठ गये पर किसानों का समूह अपने प्रिय नेता को आँखों भरे जोश की लहर में डूब रहा था।

मोटे तगड़े उस नवजवान ने कहा, अब जाना होगा। सबके कान खड़े हो गये। मंच पर वही रेशमी कुरता, लम्बे उलझे बाल, तनी हुई भौहें, क्रोध और इन्क़लाब की मूर्ति देखकर किसानों का समूह उछल पड़ा। डी० एस० पी० और मजिस्ट्रेट फिर सजग होकर खड़े हो गये।

उसने बोलना शुरू किया। किसान भाइयो! अब अपने देश में आज़ादी का आखिरी नाटक होने वाला है। नाटक की तैयारी जोरों पर है। सभी मेहनत बेचने वाले, कुचले, चूसे और पिसे हुये लोग नाटक के मैदान में उतर आये हैं। बम्बई में नौसेना के जहाज़ी फ़ौजियों ने सबसे पहली बाजी मारी। तुम्हें भी तैयारी कर लेनी है। और अलाप भरनी शुरू की :—

> समय पुकार रहा समर में बलि वेदी में ज्वार उठा,
> अधिकारों के लिये एक होकर मनुष्य ललकार उठा।
> धधक उठी बम्बई, करांची, लपटों में है कलकत्ता,
> जनजन में विद्रोह बढ़ रहा दहल रही शासन सत्ता।
> करने लगा मौत से लड़कर मनुज क्रान्ति की अगुआई,
> अँगारों, गोली, गोलों पर लाल पताका फहराई॥

तड़तड़तड़, तालियों से फिर आसमान गूंज उठा, जवानों बूढ़ों और

किशोरों में नई लहर आ गई। एक-एक लाइन पर गुस्सा और इन्क़लाबी जोश उबलने लगा। हरएक के भौंह तन गईं।

सैनिक उभरे नौसेना के जिन्हें न दुश्मन की शंका,
बजा दिया सागर के अन्दर बीस जहाजों में डंका।
संगीनों पर चढ़ी दिलेरी लेकर अपनी कुरबानी,
स्वाभिमान बन गया जुझारू प्राणों ने की पहुनाई।

मुट्ठियाँ बँध गईं, लाठियाँ तन गईं। अब केवल देर थी यह कहने की कि इन रायफल वालों को मार भगाओ। लाइन लाइन शब्द-शब्द पर किसान बावला हो तालियाँ पीटता। उनका मन, उनका शरीर, उनका जोश सब कुछ कवि की वाणी में मशीनगन की गोलियों की तरह उछल रहा था। पिस्तौल और बन्दूकधारी पुलिस और अफसर मंत्र मुग्ध होकर सुन रहे थे कविता। मजिस्ट्रेट डी० एस० पी० से कह रहा था निकल गया धोखा देकर। हम लोग समझे थे कि चूतिया है मगर बना गया हम सब को। बड़ा जोशीला है, ज़हर है। इस तरह का कवि तो हमने अब तक न देखा था न सुना था। शायद भूषण ऐसा ही होगा।

बिकते रहे बैल बन अब तक जो कि नहीं छुड़ा पाये,
एक जून भी अमन चैन से पेट न अपना भर पाये।
खेत और खलिहान मिलों, खानों में खून खपा सारा,
अब की चूक, प्राण ले लेगी करो भाग्य का निबटारा।

सुनने वाले लाल हो गये, कांग्रेस वालों ने कहा कम्युनिस्ट पार्टी का कवि है। यह जनता की पार्टी है, जनता का कवि है। अन्त में कवि ने, भगतसिंह, आजाद, जवानी, माता के दूध और बच्चों की क़सम दिलाते हुये कहा।

प्राण दान जन युग लाया है अपना घर निर्माण करो,
क़सम तुम्हें अल्लाह राम की चेतो लाल विहान करो।

और बढ़कर विदेशियों की ठकुराई हिन्दुस्तान से मिटा दो। सबने मुट्ठियाँ बाँधकर, लाठियाँ तानकर क़सम खाई। मजिस्ट्रेट काँप रहा था। शिवगढ़ का मैनेजर देखने आया था कि सभा तोड़ दी गई होगी। नेता गिरफ्तार कर लिये गये होंगे। किसान गोलियों से भून दिये गये होंगे। पर यह क्या मजिस्ट्रेट कह रहा है, मैनेजर भागो, भागो नहीं तुम्हारे पीछे हम लोग भी न बचेंगे। मैनेजर को घोड़ी घूमी उसका पता न था।

कवि बोला, किसानों शिवगढ़ के पिट्ठुओं से कह दो कि चप्पा-चप्पा जमीन किसानों की है, तुमने खूब मनमानी की है। अब कामरेड जितेन्द्रनाथ के पिटने का बदला एक-एक किसान का बच्चा लेने को तैयार है। यह तुम पर गोलियाँ चलाने आये थे, तुम्हारे नेताओं को गिरफ्तार करने आये थे। तुम्हारे उठते हुये आन्दोलन को सदा के लिये दफ़ना देने आये थे। बोलो अब शिवगढ़ की चलेगी या तुम्हारी। किसानों ने कहा हमारी।

तो फिर लाठियाँ उठाकर दिखला दो इन अफ़सरों को और कि बीस-बीस पौर हैं, अब शिवगढ़ की ज़मीन किसानों की ज़मीन है। बोलो नेताओं को साथ लेकर चलोगे या अलग-अलग जाओगे। सबने मुक्का तान कर आवाज़ दी साथ चलेंगे।

फिर क्या था किसानों का अपार समूह हरे-हरे धान के खेतों की मेड़ों, नाली, नकटों और दूर तक फैली जलराशि चीरता, गगनभेदी नारे गुंजाता लाल झण्डे लिए नेताओं के साथ एक ओर चल दिया। मजिस्ट्रेट की एक सौ चवालीस और यू० पी० सरकार का फ़तवा, मुर्दनी लिये काँपते हुये शिवगढ़ के महल की ओर जा रहा था।

खेतों की फसल सर उठाये निर्माणकारी किसानों का स्वागत कर रही थी। लाठियों के साये में नेता एक नयी दुनिया की तस्वीर बनाते चले जा रहे थे।

॥ इति ॥